योगविद्या

वर्ष 8 अंक 8
अगस्त 2019
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2019

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : हठ योग यात्रा 3-4, 2019

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

थोड़ा-सा प्राणायाम करो

प्राणायाम और आसन के अभ्यास में कोई खतरा नहीं, बशर्ते आप समझदारी और सतर्कता से अभ्यास करें। लोग बेवजह डर जाते हैं। अगर आप सावधान नहीं हैं तो आपको हर चीज में खतरे का सामना करना पड़ सकता है। सीढ़ियों से उतरते समय आप सावधान नहीं रहें तो आप गिर सकते हैं और आपकी हड्डियाँ भी टूट सकती हैं।

प्राणायाम से बढ़कर कोई शुद्धिकारक नहीं। जिस तरह एक सुनार सोने को तपाकर और फिर जोर से फूँक मारकर उसकी अशुद्धियों को निकालता है, उसी तरह योग साधक भी अपने शरीर, इन्द्रियों, प्राण एवं मन की अशुद्धियों को प्राणायाम के अभ्यासों द्वारा दूर करता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 8 अंक 8 अगस्त 2019
(प्रकाशन का 57 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 संकीर्तन विज्ञान
12 भक्ति और समर्पण
17 प्रत्याहार की साधना
24 सारा जगत् एक रंगमंच
33 महामंत्र का माहात्म्य
35 कर्म, कर्मक्षय और ईश्वर
43 कीर्तन की महिमा
45 योगनिद्रा एवं नकारात्मकता
48 कर्मों में रचनात्मकता
51 पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल के अनुभव

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

संकीर्तन विज्ञान

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

संकीर्तन ईश्वर का स्वरूप है। ध्वनि संकीर्तन है। संकीर्तन वेदों का सार है। चारों वेद ध्वनि से ही उत्पन्न हुए हैं। ध्वनियाँ चार प्रकार की होती हैं—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति और परा। वैखरी मुखर होती है, मध्यमा कण्ठ से उत्पन्न होती है, पश्यन्ति हृदय से और परा नाभि से। संकीर्तन और वेद एक ही स्रोत से उत्पन्न हुए हैं।

लोग एक साथ बैठते हैं और लय-ताल तथा स्वर मिलाकर शुद्ध एवं दिव्य भाव से भगवान का नाम गाते हैं। यही संकीर्तन है। संकीर्तन में कुछ वाद्यों की भी संगत होती है। संकीर्तन एक अचूक विज्ञान है। यह तेजी से मन को उन्नत और भाव को अत्यधिक तीव्र बनाता है।

नाम और नामी अभिन्न हैं। नामी से नाम बड़ा है। सांसारिक अनुभव भी बताते हैं कि व्यक्ति की तो मृत्यु हो जाती है, किन्तु उसके नाम को लम्बे समय तक याद किया जाता है। कालिदास, वाल्मीकि, तुलसीदास आदि का हम आज भी स्मरण करते हैं। नाम चैतन्य है। दिव्य भाव और प्रेम से भगवान के नाम गाना ही संकीर्तन है।

संकीर्तन के समय स्वर और ताल में पूर्ण सामंजस्य और तारतम्यता का होना आवश्यक है। तभी मन ऊँचा उठता है और आनन्द का अनुभव होता है। तीव्र विकास के लिए संकीर्तन मण्डली और संकीर्तन सभा के सदस्यों को कुछ नियमों का पालन करना चाहिए। उन्हें प्रतिदिन किसी मंत्र का कम-से-कम दो माला जप करना चाहिए, एकादशी का उपवास करना चाहिए और प्रतिदिन दो घण्टे मौन रखना चाहिए। उन्हें सात्त्विक मिताहार करना चाहिए। यौन-सम्बन्ध को जितना सम्भव हो, संयत रखना चाहिए। प्रतिदिन गीता का एक अध्याय पढ़ना चाहिए। उन्हें ब्रह्ममुहूर्त्त में प्रात: चार बजे उठकर जप और ध्यान करना चाहिए। उन्हें अपनी आय का दस प्रतिशत लोकहित में खर्च करना चाहिए। उन्हें मांसाहार और सभी प्रकार के मादक द्रव्यों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। उन्हें सत्य बोलना चाहिए, दूसरों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए और पर-निन्दा का त्याग करना चाहिए। इससे शीघ्र ही चित्त-शुद्धि होती है। विवाह और अन्य सामान्य उत्सवों के अवसर पर घर में संकीर्तन का आयोजन होना चाहिए। ऐसे शुभ अवसरों पर अश्लील गानों को गाने की प्रथा को पूर्ण रूप से प्रतिबन्धित कर देना चाहिए।

संकीर्तन का रहस्य

ईश्वर एक रहस्य है, मन एक रहस्य है, संसार एक रहस्य है। संकीर्तन किस प्रकार मानव-प्रकृति को दिव्य-प्रकृति में रूपान्तरित कर देता है, किस प्रकार यह पुराने

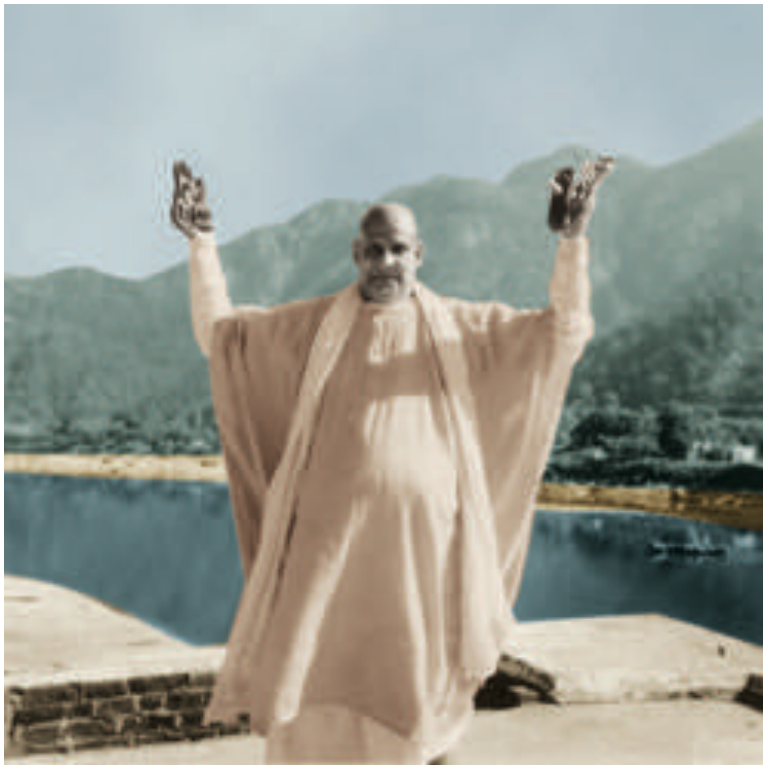

दूषित संस्कारों को पूरी तरह सुधार देता है, मानसिक संरचना को यह किस प्रकार बदल देता है, किस प्रकार यह आसुरी स्वभाव को शुद्ध सात्त्विक स्वभाव में बदल देता है और किस प्रकार यह भक्त को भगवान के सम्मुख ला खड़ा करता है, यह भी एक रहस्य है। विज्ञान और विवेचन द्वारा संकीर्तन की कार्य-प्रणाली की व्याख्या नहीं हो सकती। विवेचन एक त्रुटिपूर्ण उपकरण है। जीवन की अनेक समस्याओं को तर्क या बुद्धि द्वारा नहीं समझा जा सकता। यद्यपि अन्तर्ज्ञान बुद्धि के परे की चीज है, फिर भी यह बुद्धि का विरोध नहीं करता।

प्रत्येक शब्द में महान् शक्ति होती है। 'गर्म पकौड़ी' शब्द सुनते ही मुँह में पानी आ जाता है। किसी व्यक्ति के भोजन करते समय यदि आप 'विष्ठा' शब्द बोलें तो हो सकता है कि वह तुरन्त वमन कर दे। यदि सामान्य शब्दों का ऐसा प्रभाव है, तो भगवान के नाम के विषय में कहना ही क्या? भगवान का प्रत्येक नाम अनेक दिव्य शक्तियों और अमृत से भरा हुआ है।

कोई व्यक्ति आपत्ति करते हुए कह सकता है, 'यदि मैं मिसरी-मिसरी कहूँ, तो क्या वह मुझे मिल जायेगी? केवल राम-राम का जप करने से मुझे भगवान के

दर्शन कैसे हो जायेंगे?' जहाँ तक मिसरी की बात है, वह बाहर की चीज है, किन्तु भगवान तो आपके हृदय में ही रहते हैं, वे आपके निकटतम हैं। राम-राम जपने से मन एकाग्र और शान्त हो जाता है, और तब आपको अपने हृदय में भगवान का दर्शन होता है। भगवान का नाम भी भगवान के समान ही है। भगवान चैतन्य हैं और उनका नाम भी। किन्तु अन्य वस्तुओं और उनके नामों के साथ यह बात नहीं है।

एक व्यक्ति गहरी निद्रा में सोया हुआ है। उसके भीतर-बाहर में प्राण व्याप्त है, किन्तु यदि आप 'प्राण-प्राण' कहकर उसे पुकारेंगे, तो वह नहीं सुनेगा। पर आप केवल उसका नाम पुकार कर देखिए, वह तुरंत आपकी आवाज सुन लेगा और जग जायेगा। नाम की शक्ति ही ऐसी है। नाम मूर्तिमान् चैतन्य ही है।

पृथ्वी अन्य सभी वस्तुओं से श्रेष्ठ है। चूँकि यह आदि-शेष पर टिकी हुई है, इसलिए आदि-शेष पृथ्वी से श्रेष्ठ है। आदि-शेष शिव के हाथ का आभूषण है, इसलिए शिव आदि-शेष से अधिक महान् हैं। चूँकि भगवान शिव श्रीराम का ध्यान करते हैं, इसलिए राम उनसे श्रेष्ठ हैं। चूँकि राम के नाम का आज भी स्मरण किया जाता है, उनका नाम स्वयं राम से अधिक महान् है। ईश्वर के नाम-गायन का वासनाओं और निकृष्ट इच्छाओं से भरे हुए मन पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। इससे अनगिनत लाभ मिलते हैं। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है।

नाम और रूप

आकाश या ध्वनि ईश्वर की प्रथम अभिव्यक्ति है। ध्वनि आकाश का गुण है। ध्वनियाँ स्पन्दन हैं। वे निश्चित आकृतियों को जन्म देती हैं। प्रत्येक ध्वनि दृश्य जगत् में एक रूप को जन्म देती है और विभिन्न ध्वनियों के संयोग से जटिल आकार या स्वरूप बनते हैं। विज्ञान की पुस्तकों में कुछ ऐसे प्रयोगों का वर्णन किया गया है, जिनसे पता चलता है कि कुछ उपकरणों द्वारा उत्पन्न स्वर से बालू की परत पर निश्चित ज्यामितीय रेखाचित्र बन जाते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि लयबद्ध स्पन्दनों से तदुनसार निश्चित ज्यामितीय आकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत की पुस्तकों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि प्रत्येक राग या रागिनी का एक विशेष आकार होता है, जिन्हें इन पुस्तकों में चित्र रूप में दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए, राग मेघ को हाथी पर सवार एक तेजस्वी व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है। राग वसन्त का वर्णन फूलों से अलंकृत एक सुन्दर युवक के रूप में किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी राग या रागिनी को बिल्कुल सही ढंग से गाया जाए तो उससे आकाश में अतीन्द्रिय स्पन्दन उत्पन्न होते हैं, जिनसे इन विशेष आकृतियों का निर्माण होता है। 'वॉइस फिगर्स' (ध्वनि की आकृतियाँ) नामक पुस्तक की प्रतिभाशाली लेखिका, श्रीमती वाट्स ह्यूज़ के प्रयोगों से इसकी पुष्टि हुई है।

श्रीमती ह्यूज़ ने लॉर्ड लेटन के स्टूडियो में विशिष्ट श्रोताओं के बीच इन चित्रों का प्रदर्शन करते हुए एक व्याख्यान दिया। इसमें उन्होंने अपने अनेक वर्षों के धैर्यपूर्ण प्रयासों से प्राप्त उत्कृष्ट वैज्ञानिक उपलब्धियों को प्रस्तुत किया। वे 'आइडोफोन' नामक एक सरल यन्त्र के माध्यम से गाती हैं, जिसमें एक नली, रिसीवर और लचकदार झिल्ली है। उन्होंने पाया कि प्रत्येक स्वर एक निश्चित और स्थिर आकृति का निर्माण करता है, जो एक संवेदनशील और लचकदार माध्यम द्वारा प्रकट होती है। अपने व्याख्यान के पूर्व उन्होंने लचकदार झिल्ली पर कुछ महीन बीज रखे। उनके गायन से उत्पन्न स्पन्दनों के परिणामस्वरूप ये बीज एक निश्चित ज्यामितीय आकृति में नृत्य करने लगे! इसके बाद उन्होंने अनेक प्रकार के धूल-कणों पर प्रयोग किया, जिनमें से लॉयकोपोडियम पाउडर को विशेष रूप से उपयुक्त पाया गया। एक संवाददाता ने स्वरों से उत्पन्न आकृतियों को 'ज्यामिति और छाया का आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटन' बतलाते हुए कहा कि 'तारों, चक्रों, कुण्डलियों तथा अन्य सर्पिल आकृतियों की मोहक और क्रमबद्ध रूपरेखाएँ प्रस्तुत की गयीं।' एकबार जब श्रीमती ह्यूज़ कोई स्वर गा रही थीं तब एक 'डेज़ी' फूल की आकृति अचानक प्रकट हुई और पुन: लुप्त हो गयी। उन्होंने बताया कि इस रूप को वापस प्रकट करने के लिए उन्हें कई सप्ताहों तक प्रयास करना पड़ा, तब जाकर उन्हें सफलता मिली।

अब उन्हें 'डेज़ी' आकृति को लाने के लिए उपयुक्त स्वर और उसके वास्तविक उतार-चढ़ाव की सही जानकारी हो गयी है। आरोह-अवरोह के परिवर्तन की एक विशिष्ट विधि द्वारा इस आकृति को स्थिर और निश्चित बनाया जाता है। डेज़ी की अनेक सुन्दर आकृतियों के बाद स्टूडियो के परदे पर एक-के-बाद-एक अन्य उत्कृष्ट आकृतियाँ प्रकट होने लगीं। उनमें प्रकाश और छाया से आच्छादित समुद्री दैत्य, सर्पीले आकार, वृक्ष, वृक्षों से गिरते हुए फल, वृक्षों की पृष्ठभूमि में चट्टानें, समुद्र और दूर-दूर तक फैले हुए क्षेत्र, इत्यादि प्रमुख थे। दर्शक आश्चर्यचकित होकर बोलने लगे, 'ये तो बिल्कुल जापानी दृश्य जैसे लगते हैं!'

एक बार फ्रांस में मैडम फिनलंग एक भजन 'ओ ईव मरियम' गा रही थीं। दर्शकों ने देखा कि वहाँ ईसामसीह को गोद में लिए मरियम की छाया उभरकर प्रकट हो गयी! इसी प्रकार वाराणसी का एक बंगाली छात्र, जो उस समय फ्रांस में अध्ययन कर रहा था, जब भैरव का भजन गाने लगा, तो लोगों के सामने भैरव और उसके वाहन श्वान की आकृति प्रकट हो गयी!

जब भगवान का नाम बार-बार गाया जाता है, तब धीरे-धीरे उपासक के इष्ट देवता के स्वरूप की आकृति निर्मित होने लगती है और इष्ट के इस सूक्ष्म स्वरूप का सौम्य प्रभाव कीर्तन करने वाले को आच्छादित कर देता है। जब साधक ध्यान की अवस्था में प्रवेश करता है, तब उसकी आन्तरिक वृत्ति का प्रवाह अति तीव्र हो

जाता है। ज्यों-ज्यों ध्यान की गहराई बढ़ती है, यह प्रभाव अधिक स्पष्ट होता जाता है। मन की एकाग्रता से ऊर्जा का प्रवाह सिर के ऊपरी भाग की ओर जाता है और दैवी अनुग्रह चुम्बकीय शक्ति की सूक्ष्म वर्षा के रूप में अवतरित होता है। इस वर्षा के प्रवाह से सम्पूर्ण शरीर में एक अद्‌भुत दीप्ति का संचार होता है और साधक अनुभव करता है कि वह सूक्ष्म विद्युत-प्रवाह से ओत-प्रोत हो रहा है।

उपर्युक्त प्रयोगों से यह तथ्य सत्यापित होता है कि ध्वनि से आकृति उत्पन्न होती है और एक विशेष प्रकार के स्वर से एक विशेष प्रकार के रूप या आकृति की ही उत्पत्ति होती है। यदि आप किसी विशेष आकृति को पुन: उत्पन्न करना चाहते हैं, तो आपको एक विशिष्ट स्वर को एक विशेष स्वरमान पर उत्पन्न करना होगा। इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए न तो कोई दूसरा स्वर या अक्षर काम आएगा और न ही कोई समानार्थी शब्द। उदाहरण के लिए, *'अग्निमिले पुरोहितम्'* के बदले न तो *'वह्निमिले पुरोहितम्'* काम करेगा और न ही *'इले अग्निं पुरोहितम्'* प्रभावी होगा। ऐसा करने से मंत्र का प्रभाव समाप्त हो जाता है। अत: आप किसी मंत्र का न तो अनुवाद कर सकते हैं और न ही क्रम-परिवर्तन। यदि आप ऐसा करते हैं तो वह मंत्र नहीं रह जाएगा। यदि किसी मंत्र का स्वर या वर्ण दोषपूर्ण है तो वह गलत दिशा में कार्य करता है और उसका परिणाम अपेक्षा के ठीक विपरीत भी हो सकता है।

किन्तु राम-नाम या भगवान के अन्य किसी नाम, जैसे, शिव, कृष्ण या हरि के साथ ऐसी बात नहीं है। ये नाम किसी भी प्रकार से गाए जा सकते हैं। 'उल्टा नाम जपत जग जाना, वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।' यह सर्वविदित है कि डाकू रत्नाकर *मरा-मरा,* अर्थात् *राम-राम* का उल्टा नाम जपते हुए महर्षि वाल्मीकि हो गया और उसने प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त किया।

राम नाम जपते रहो, रीझ भजो या खीझ।
उल्टा-पुलटा ऊपजे, जस धरती को बीज॥

अत: ईश्वर के नाम का अवश्य जप करो। चाहे प्रेम और भाव सहित करो या क्रोध से, इसका प्रभाव अवश्य होगा। एक किसान अपने खेत में बीज को सही ढंग से बोए या ऐसे ही फेंक दे, वह निश्चित रूप से अंकुरित होगा। ऐसी ही बात प्रभु-नाम के जप के साथ भी है।

संकीर्तन के लाभ

संकीर्तन करने वाला शरीर और संसार को भूल जाता है। संकीर्तन से देहाध्यास समाप्त हो जाता है और गहन अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। संत तुकाराम एक अनपढ़ किसान थे, वे अपना हस्ताक्षर तक नहीं कर सकते थे। हाथ में करताल लिये वे निरन्तर भगवान कृष्ण के नाम 'विट्‌ठल-विट्‌ठल' का संकीर्तन किया करते थे।

उन्हें श्रीकृष्ण के साकार स्वरूप का दर्शन हुआ। संकीर्तन के द्वारा उनके ज्ञानचक्षु खुल गये। आज उनके प्रेरक अभंग बम्बई विश्वविद्यालय के एम.ए. पाठ्यक्रम में पढ़ाये जाते हैं। निरक्षर, अनपढ़ तुकाराम ने कहाँ से यह ज्ञान प्राप्त किया? उन्होंने संकीर्तन के माध्यम से ज्ञान का स्रोत पा लिया। गहन संकीर्तन से प्राप्त भाव-समाधि की अवस्था में वे ज्ञान के दिव्य स्रोत में प्रवेश कर गए। क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि ईश्वर का अस्तित्व है, ज्ञान ही ईश्वर का स्वरूप है और इस ज्ञान को प्राप्त करने में संकीर्तन की आश्चर्यजनक भूमिका होती है?

इस कलियुग में संकीर्तन द्वारा ही ईश्वर का दर्शन या दिव्य चेतना की प्राप्ति होती है। संकीर्तन से प्रेम का विकास होता है। संकीर्तन दिव्य चेतना की प्राप्ति का सबसे सुगम, सुनिश्चित, सुरक्षित और शीघ्रतम मार्ग है। जो लोग प्रारम्भ में मानसिक आनन्द के लिए संकीर्तन करते हैं, वे कुछ समय बाद इसके शुद्धिकारक प्रभावों का अनुभव करेंगे, और तब वे स्वयं भाव और श्रद्धा सहित संकीर्तन करने लगेंगे। भगवान के नाम में एक रहस्यमयी शक्ति है। मनुष्य केवल रोटी पर नहीं जी सकता, किन्तु वह प्रभु-नाम के सहारे अवश्य जी सकता है।

ईश्वर के नाम-संकीर्तन से उत्पन्न मधुर स्पन्दन, मन को नियंत्रित करने में भक्त की सहायता करते हैं। वे उसके मन पर एक सौम्य प्रभाव डालते हैं। ये स्पन्दन उसके मन को शीघ्र ही उसकी पुरानी लीक से ऊपर उठाकर, दिव्यता की भव्य ऊँचाइयों तक ले जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति पूरे भाव एवं प्रेम के साथ संकीर्तन करता है, तो इससे वृक्षों तथा पशु-पक्षियों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है और वे विशेष प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं। संकीर्तन का ऐसा शक्तिशाली

प्रभाव होता है! सिद्ध एवं ऋषि-मुनि संकीर्तन स्थल पर आते हैं। आप पण्डाल के चारों ओर उनके दिव्य प्रकाशपुंज देख सकते हैं।

नाद उपासना के द्वारा जीवात्मा अध्यात्म के सोपानों पर चढ़ते हुए परमात्मा से सायुज्य प्राप्त कर सकता है। नाद दो प्रकार के होते हैं, स्थूल या आहत और सूक्ष्म या अनाहत। प्रथम से होते हुए दूसरे तक पहुँचा जा सकता है। आत्मा यदि परब्रह्म से मिलना चाहती है या उच्चतम निर्विकल्प समाधि में जाना चाहती है, तो प्राण का अग्नि से संयोग नितांत आवश्यक है। मूलाधार में स्थित अग्नि 'र' बीज का द्योतक है। यह मूर्धा या ब्रह्मरन्ध्र में स्थित प्राण से संयोग के लिए ऊपर उठती है, जिसका बीज 'म' है। 'र' और 'म' का संयोग तारक बीज है, जिसके द्वारा साधक की आत्मा संसार को पार करके निर्भयता, अमरत्व और परमानन्द को प्राप्त होती है। संकीर्तन सूक्ष्म नाद को सुनने और अन्ततः दिव्य संवाद स्थापित करने का एक आसान माध्यम है।

पदार्थ के सूक्ष्म तत्त्वों अर्थात् तन्मात्राओं से अन्तःकरण निर्मित हुआ है। मन वायु तन्मात्रा से; चित्त, जल तन्मात्रा से और अहंकार पृथ्वी तन्मात्रा से बना है। तत्त्व जितना अधिक सूक्ष्म होता है, उतना ही अधिक शक्तिशाली होता है। जल पृथ्वी से अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि यह पृथ्वी से अधिक सूक्ष्म है। जल मिट्टी को बहा देता है। अग्नि जल से अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि यह जल से अधिक सूक्ष्म है। अग्नि जल को सुखा देती है। वायु अग्नि से अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि यह अग्नि से अधिक सूक्ष्म है। यह झोंके से अग्नि को बुझा देता है। आकाश वायु से अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि यह वायु से अधिक सूक्ष्म है। वायु आकाश में स्थित है। आकाश ही वायु का आधार है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी का जन्म हुआ है। सृष्टि के प्रलय-काल में पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में और वायु का आकाश में लय हो जाता है।

मन पाँच विषयों का भोग करता है। मन वह अवरोध है, जो मनुष्य को परमात्मा से अलग करता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच सूक्ष्म तत्त्व मिलकर अन्तःकरण का निर्माण करते हैं। ये पाँच लुटेरे हैं, जिन्होंने आत्मारूपी मणि को लूट लिया है। आकाश इनका सरदार है। यदि आप आकाश को नियंत्रित कर लेते हैं, सरदार को अपने वश में कर लेते हैं, तो अन्य चारों तत्त्व या लुटेरे भी आपके वश में आ जायेंगे। यदि आप पाँचों तत्त्वों को नियंत्रित कर लें, तो मन आसानी से आपके वशीभूत हो जायेगा। आकाश की तन्मात्रा ध्वनि है। यदि आप लय और ताल के साथ मधुर स्वर में हरि का नाम गा सकें, तो आप आकाश तत्त्व पर नियंत्रण प्राप्त कर लेंगे और इस प्रकार आप अन्य तत्त्वों एवं मन पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे। अतः मन को सरलता से वश में करने और ईश्वरीय-चेतना प्राप्त करने में संकीर्तन बहुत सहायक होता है। भगवान हरि उस साधक से अति प्रसन्न होते हैं, जो प्रेम से उनके नाम गाता है।

मधुर संगीत स्नायुओं को आराम पहुँचाता है। अमेरिका में चिकित्सक संगीत के माध्यम से रोगों की चिकित्सा करते हैं। शेक्सपीयर ने तो यहाँ तक कहा है, 'जिसके अन्दर संगीत नहीं है और जो मधुर ध्वनियों को सुनकर भी भाव-विभोर नहीं होता, वह विश्वासघाती, कपटी और दुष्ट है। उसकी आत्मा की गति रात्रि के समान निष्प्रभ होती है और उसका स्नेह इरेबस के समान अन्धकारमय होता है। ऐसे व्यक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिए।'

अनवरत संकीर्तन से मन शुद्ध होता है। वह शुभ और पवित्र विचारों से भर जाता है। प्रतिदिन संकीर्तन करने से अच्छे संस्कार सशक्त होते हैं। जो मनुष्य स्वयं को अच्छी सोच और पवित्र विचारों का प्रशिक्षण देता है, उसके अन्दर शुभ विचार करने की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है। अच्छे विचारों की निरन्तरता से उसका चरित्र रूपान्तरित हो जाता है। संकीर्तन के समय जब मन ईश्वर के रूप का चिन्तन करता है, तब मानसिक ढाँचा वास्तव में ईश्वर की प्रतिमा के रूप में बदल जाता है। मन पर वस्तु की छाप पड़ जाती है। इसे ही संस्कार कहते हैं। जब बार-बार यह क्रिया दोहरायी जाती है, तब संस्कार मजबूत होते हैं और इससे मन में एक आदत-सी बन जाती है। दिव्य विचारों में विचरण करने वाला व्यक्ति, निरन्तर चिन्तन और ध्यान द्वारा स्वयं दिव्य बन जाता है। उसकी मनोवृत्ति और भाव शुद्ध और दिव्य हो जाते हैं। ध्याता और ध्येय, उपासक और उपास्य, विचारक और विचार एक हो जाते हैं। यही समाधि है। यह संकीर्तन और उपासना का फल है।

मेरे प्रिय मित्रों! प्रतिदिन संकीर्तन करो। संकीर्तन भक्ति को दूर-दूर तक फैलाओ। संकीर्तन द्वारा विश्वप्रेम का विकास करो। सभी जगह संकीर्तन मण्डली बनाओ। संकीर्तन द्वारा पृथ्वी पर हर घर में वैकुण्ठ ले आओ और सच्चिदानन्द अवस्था को प्राप्त करो!

भक्ति और समर्पण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

यदि मनुष्य में प्रभु के लिए दिव्य प्रेम का अभाव है, तो उसकी चेतना किसी भी प्रकार से साधना में लीन नहीं होगी। इसलिए सर्वप्रथम तुम्हें उसके प्रति प्रेम बढ़ाना चाहिए। दिव्य प्रेम का अनुभव केवल ईश्वर के अनुग्रह तथा संतों के आशीर्वाद से होता है।

असतो मा सद्गमय–असत्य से मुझे सत्य की ओर ले चलो

यदि तुम्हारी पत्नी को कुछ हो जाए तो तुम्हारे मन की क्या अवस्था हो जाएगी? उदाहरणार्थ, यदि वह शहर में कहीं जाती है और बहुत रात हो जाने पर भी नहीं लौटती तो तुम्हारी मानसिक दशा कैसी होगी? मान लो, तुम दोनों झगड़ पड़ते हो, और वह अपने पिता के घर चली जाती है, तो तुम्हें जरूर इस घटना से कुछ अनुभूति होगी। वह अनुभूति किस प्रकार होगी, यह दूसरी बात है।

इस अनुभूति के पीछे कारण क्या है? केवल राग, और कुछ नहीं। जितना ही अधिक प्रेम होगा, उतनी ही उसकी स्मृति या चेतना होगी तथा तीव्र अनुभूति भी। अब तुम समझ रहे होगे कि तुम्हारा इष्ट देवता के प्रति इतने मन्द प्रेम का रहस्य क्या है? तुमने अभी उसके लिए इतना प्रेम नहीं बढ़ाया है, जितना तुम्हें स्त्री और धन के लिए है। धर्म-साधना, गुरु-मन्त्र और ईश्वर को गाली देने से कुछ नहीं होगा, जब तक तुमने उसके साथ मिलने की अति तीव्र इच्छा का विकास नहीं किया है।

तुम्हारा मन घड़ी के पेण्डुलम की भाँति इधर-उधर क्यों डोलता रहता है? मन इसके लिए दोषी नहीं, यह तुम्हारा ही दोष है, क्योंकि तुम बिना भाव और हृदय के साधना करते हो। क्या तुमने कभी अपनी बिखरी हुई भावनाओं को बटोरकर प्रभु की ओर बहाने का प्रयत्न किया? अरे, वही तो उन्हें आत्मसात् कर सकता है। लगता है कि तुम्हें दो-चार चाबुक की आवश्यकता है।

एक महिला है जो पिछले पच्चीस वर्षों से केवल फल और दूध पर रह रही है। उसका आध्यात्मिक स्तर इस समय क्या है? वही जहाँ से उसने पच्चीस साल पूर्व चलना प्रारम्भ किया था। वह अब भी क्रोध, लोभ, चुगली, निन्दा, प्रतिहिंसा, मलिनता, अहंकार और काम की दासी है। क्या तुम कह सकते हो कि उसने पच्चीस वर्षों तक सिर्फ फल और दूध पर रहकर कुछ प्रत्यक्ष लाभ उठाया है? नहीं, यह रास्ता नहीं है। बूढ़ी औरतों के ऐसे धर्म के चक्कर में मत पड़ो।

जब तक तुम्हारा मन एक केन्द्र में लय नहीं होता, और जब तक वह उसके लिए अत्यधिक भावनाशील नहीं बनता, कितना ही व्रत, तीर्थयात्रा, शास्त्र-अध्ययन और पूजा-पाठ क्यों न किया जाए, लेकिन दैवी अनुभूति नहीं होगी। जब वह महिला प्रभु के दर्शनार्थ मेरे पास आई तो मैंने उसे बिल्कुल दूसरे तरीके से राय दी। मैंने उसे निर्देश दिया, 'तोड़ो और जोड़ो', अर्थात् वैराग्य और अभ्यास। इसका तात्पर्य क्या है? मान लो जल की धारा बह रही है। तुम उससे अपना खेत सींचना चाहते हो। तुम्हें उस प्रवाह को काटकर अपने खेत की ओर सींचने के लिए ले जाना पड़ेगा। इसलिए पहले तुम्हें उस धारा को मोड़ना, उसे अपने मूल प्रवाह से अलग करना पड़ेगा। पुन: उसको एक नाली के जरिए अपने खेत से जोड़ना पड़ेगा। इसी प्रकार तुम्हें सांसारिक वस्तुओं से अपने राग को अलग करना पड़ेगा। पुन: उसी राग को ईश्वर-स्मरण में लगा दो। मन की निम्न सुखों और वस्तुओं की ओर जो प्रवृत्ति है, जब भी वह केन्द्र से अलग हो, उसे बार-बार लौटाकर पुन: प्रत्येक बार केन्द्र पर ला धरना चाहिए। विचार-प्रवाह को, जिसकी प्राकृतिक रूप से दो प्रवृत्तियाँ हैं, आकर्षण और विकर्षण, अर्थात् राग और द्वेष की ओर बहने की, उधर से लौटाकर अनासक्ति रूपी राजपथ के द्वारा अनन्त की ओर जाना होगा।

भक्ति दिव्य उपहार है, जो प्रभु की कृपा से प्राप्त होती है। दुर्भाग्यवश हम ने इस दिव्य-सम्पत्ति का अपनी सांसारिक इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और फैशन आदि

वासनाओं की पूर्ति के लिए दुरुपयोग किया है। ईश्वर का वरदान जो प्रेम है, वह स्त्री, बच्चों, धन, नाम और यश आदि में ही व्यय हो रहा है। इस प्रकार मनुष्य ब्याज-सहित मूलधन को भी खो रहा है। उसके पास केवल रिज़र्व बैंक के नोटों के बण्डल बच जाते हैं, जिसे वह केदारनाथ में पूजा के समय प्रभु को समर्पित करता है। इसलिए उसे अपने सांसारिक वस्तुओं के प्रेम को अलग कर अनन्त प्रभु की ओर मोड़ना चाहिए। अब तुम समझ गए होगे कि तोड़ने और जोड़ने से मेरा क्या तात्पर्य है।

उपवास करने से कोई लाभ नहीं, यदि तुम्हारा मन बुरी भावनाओं की ओर तेजी से भागता है। यदि तुम अच्छी तरह खाओ और पीओ, साथ-साथ पवित्र और शान्तिमय आन्तरिक जीवन भी व्यतीत करो तो क्या हानि है? एक मांसाहारी मित्र जो मन और कर्म से परोपकारी है तथा जिसके रोम-रोम में त्याग की भावना है, उस शाकाहारी और मनमौजी पण्डित से लाख दर्जे अच्छा है, जो काला-बाजारी, मिलावट, शोषण तथा समाज विरोधी कार्य करता है। एक श्रेष्ठ किन्तु अनेक बुराइयों से युक्त आदमी बनने की अपेक्षा सुन्दर गुणों से युक्त सरल आदमी बनना कहीं अच्छा है। तत्पश्चात् हरिभक्त बनो, सबके मित्र, सबके बन्धु और अपने स्वामी।

तमसो मा ज्योतिर्गमय–अन्धकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो

मुझे भगवान का एक उपदेश याद आ रहा है जहाँ वे अपने प्यारे शिष्य, अर्जुन से कहते हैं, 'अविद्या की सभी धारणाओं को त्याग कर तुम अकेले केवल मेरी शरण में आओ। मैं सब पापों से तुम्हें मुक्त कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो।' नोट करो, 'अकेले शरण में आओ।' यहाँ भगवान कहते हैं कि सारे बोझ उनके चरणों पर डाल दो। हाँ, उनका तात्पर्य पूर्ण समर्पण से है, जहाँ हम परिस्थितियों से बाध्य होकर नहीं, बल्कि स्वेच्छा से हाथ जोड़कर, शीश झुका कर अहं को समर्पित कर तथा हृदय को दिव्य बनाकर उनके चरणों में जाते हैं। जब तक पत्नी पति के समक्ष पूर्ण समर्पण नहीं करती, तब तक वह पति की निकटता उतनी नहीं पा सकती, जितने की वह कामना करती है। जब वह पूर्ण समर्पण कर देती है, तभी वह पति पर, साथ-साथ उसकी सभी वस्तुओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करती है। इस अधिकार-प्राप्ति का रहस्य पूर्ण समर्पण, अर्थात् देने में छिपा हुआ है–क्षणिक मूल्य वाली वस्तु का पूर्ण मूल्य की वस्तु के लिए त्याग। हाँ, जब तुम अपने आपको दे देते हो तो केवल 'उसको' नहीं पाते, बल्कि अपने आप को भी पुन: प्राप्त करते हो।

सागर कहता है सरिता से, 'प्रिये, यदि तुम मेरे साथ एक होना चाहती हो तो तुम्हें अपने आपको मुझमें लय करके अपने व्यक्तित्व को खोना पड़ेगा।' इसी प्रकार यदि तुम ईश्वर को पाना चाहते हो, तो तुम्हें अपने सारे ध्यान को, जिसे तुमने दुनिया को दे रखा है, लौटाकर अपने इष्ट देव पर लगाना होगा। जैसे ही तुम्हारा ध्यान उसकी ओर लगा तो समझो कि ध्यानयोग प्रारम्भ हो गया है। शैतान को धन दे दो, किन्तु

प्रेम और चिन्तन को भगवान के लिए बचाकर रखो। उसे तुम्हारे कंचन, केले और कलाकन्द की भूख नहीं। वह अनन्त विश्वमण्डल को कब से पालता आ रहा है! एक भेंट तुम चढ़ा सकते हो, वह है ध्यान और प्रेम। जब तक तुम भागते हुए छायामण्डल तथा नाश हो जाने वाले सौन्दर्य की ओर से अपनी दृष्टि नहीं फेरोगे, तब तक तुम पाप और सन्ताप से मुक्ति नहीं पा सकोगे। जब तक तुम सांसारिक सुखों और गम्भीर विषयासक्ति की ओर से अपनी नजर फेरोगे नहीं, तब तक तुम कैसे शान्त और सुखी हो सकते हो? अपनी आत्मा का हनन कर तुम सर्वोत्तम की प्राप्ति करोगे तो कैसे?

तुम दिल्ली जाने वाली ट्रेन में बैठे हुए यात्री हो। तुम्हारे रास्ते में बहुत स्टेशन आएँगे, किन्तु तुम्हें इनमें से किसी पर भी उतरना नहीं चाहिए। यह याद रखो कि तुम्हें दिल्ली जाना है, और कहीं नहीं। जो कर्तव्य तुम अपनी स्त्री और बच्चे के लिए कर रहे हो, वही तुम्हारा अन्तिम लक्ष्य नहीं है। तब भी तुम्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए इन सब स्टेशनों से होकर जाना होगा। तुम्हें अपनी आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ उन सब कर्तव्यों को करते जाना है। यदि तुम रास्ते के किसी स्टेशन को अपनी अन्तिम मंजिल मानकर उतर पड़ोगे तो तुम प्लेटफार्म पर बिल्कुल अनजान और निराश्रित हो जाओगे। जीव को परम लक्ष्य की ओर ले आने के लिए 'प्रवृत्ति मार्ग' रास्ता है, 'निवृत्ति' है अन्दर की एक भावना, लक्ष्य का सतत् स्मरण मोक्ष है। तुम अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ण सुधि रखते हुए जीवन-पथ पर आगे बढ़ते चलो।

काम तुम्हें अवश्य करना है, क्योंकि दूसरा रास्ता नहीं। जीवन सार्थक करने के साथ-साथ परिवार के पोषण के लिए कार्य करना ही है। यह निसेनी का पहला चरण है। जैसे ही पैर अगले डण्डे पर बैठा, वैसे ही साधक को पिछला पैर उठाकर उसे अगले डण्डे पर रखना पड़ता है। इसलिए प्रेम और समर्पण ही मार्ग है। अब तुम प्रभु पर ध्यान शुरू कर सकते हो। यह भक्तियोग हुआ। प्रेम और समर्पण के द्वारा उससे ऐक्य स्थापित करने के लिए भक्तियोग ही रास्ता है।

साधक को उसे उतने ही प्यार से पुकारना चाहिए, जितने प्यार से पत्नी अपने पति या बच्चे को पुकारती है। प्रभु को उसी प्रकार याद करना चाहिए, जैसे कोई स्त्री अपने उस अमूल्य सोने के हार को याद करती है जिसे उसके पति ने सुहागरात के दिन उसे उपहार में दिया था और जो चन्द मिनट पहले ही चोरी हो गया हो। मनुष्य को ईश्वर के लिए हृदय में वैसी ही तीव्र इच्छा होनी चाहिए, जैसी कि एक स्त्री को, जिसके पति ने विदेश से उसके लिए महंगी साड़ी भेजी हो और वह उसे अपनी सहेलियों को दिखाने के लिए अत्यधिक उत्सुक हो।

न मन्दिरों में, न घण्टी बजाने से, न शंख फूँकने से, न आरती उतारने से और न ताली बजाने से ही कोई उसे देख सकता है। जो साधक गतिशील और रचनात्मक प्रकृति के प्रेम को अपने हृदय में धारण करता और उसका पोषण करता है, वही ईश्वर को अन्दर और बाहर देख लेता है।

मृत्योर्माऽमृतं गमय–मुझे मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो

समर्पण का अगला कदम लो, उसके बाद मैं समझता हूँ कि तुम्हारे अधिकांश सन्देह दूर हो जाएँगे। मकान की मरम्मत के लिए तुम क्यों परेशान हो जब मकान-मालिक उसके लिए तैयार बैठा है? यह उसका मन्दिर है। वह जैसा चाहे, उसे करने दो। समर्पण के साथ-साथ यह भावना होनी आवश्यक है।

इसी प्रकार तुम्हें यह भी याद रखना चाहिए कि केवल यह शरीर नहीं, बल्कि तुम्हारी पत्नी, रिश्तेदार तथा धन भी उसके दिए उपहार हैं। एक क्षण के लिए भी यह न भूलो कि केवल वही तुम्हारी सारी जरूरतों को पूरी कर रहा है। इस तरह की भावना से न केवल चिन्ता और भय दूर होंगे, इससे अपूर्व आत्मिक शक्ति भी प्राप्त होगी।

अनिद्रा, सरदर्द, रक्तचाप और इसी प्रकार की अन्य बीमारियाँ हमें क्यों होती हैं? क्या इसका कारण यह नहीं कि पूर्ण आत्म-समर्पण के आवश्यक गुणों का हममें अभाव है? मेरा विश्वास है कि कुछ ऐसा नियम या भाव जरूर है, जिसका पालन कर हम मानसिक रूप से निश्चिन्त रह सकते हैं। इसे तुम अनासक्ति कह सकते हो। मैं इसे आत्म-समर्पण कहता हूँ। कुछ भी हो, दोनों एक ही वस्तु हैं।

समर्पण की कला भी एक गुण है। वह हमेशा पूर्ण होना चाहिए। शत-प्रतिशत होना चाहिए। मरे मन से समर्पण समर्पण नहीं है। जबानी समर्पण समर्पण नहीं है। प्रेम से किया हुआ समर्पण ही वास्तविक और स्थायी होता है।

भक्तिभाव

आरती का पुनीत समय था। शंख और घंटे की आवाज से भगवान जगन्नाथ का मंदिर गूँज रहा था। चैतन्य महाप्रभु गरुड़स्तम्भ के पास खड़े भगवान की आरती बड़ी तन्मयता से गा रहे थे। भक्तों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। पीछे वालों को मूर्ति के दर्शन नहीं हो पा रहे थे। एक उड़िया स्त्री जब दर्शन करने में असमर्थ रही तो झट गरुड़स्तम्भ पर चढ़ गई और एक पैर महाप्रभु के कंधे पर रखकर आरती देखने लगी।

महाप्रभु ने तो इस बात को सहन कर लिया, परन्तु उनका शिष्य गोविंद भला क्यों सहन करता! वह उस स्त्री को डाँटने लगा, पर महाप्रभु ने ऐसा करने से मना किया, 'क्यों बाधक बनते हो, भगवान के दर्शन कर लेने दो। इस माता को दर्शन की जो प्यास भगवान ने दी है, यदि मुझे भी प्राप्त होती तो मैं धन्य हो जाता। इसकी तन्मयता तो देखो कि इसे यह ध्यान नहीं रहा कि पैर किसके कंधे पर है।'

महाप्रभु का इतना कहना था कि वह धम्म से नीचे आ गिरी और उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगी। महाप्रभु ने अपने चरण हटाते हुए कहा, 'अरे, तुम यह क्या कर रही हो! मुझे तुम्हारे चरणों की वंदना करनी चाहिए ताकि तुम जैसा भक्तिभाव मैं भी प्राप्त कर सकूँ।'

प्रत्याहार की साधना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अर्जुन का विषाद दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण उसे कर्त्तव्य रूप में कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं और समझाते हैं कि जिस मोह के कारण वह शोकमग्न हुआ है, उसका मूल कारण आसक्ति है। जब आसक्ति द्वारा मोह प्रबल बन जाता है, तब बुद्धि भ्रमित हो जाती है और मनुष्य अपने कर्त्तव्य और धर्म को भूल जाता है। उसका मन विचलित हो जाता है, मन की शान्ति समाप्त हो जाती है। जब मन विचलित और अशान्त हो जाता है, तब आदमी निकम्मा बन जाता है। वह न तो कर्मों को सही तरीके से सम्पन्न कर सकता है, न सही चिंतन को अपना सकता है, न ही सही बुद्धि से किसी निर्णय को ले सकता है। इसलिये श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि तुम अपना कर्त्तव्य निभाते रहो और अपने मन को संभाल कर रखने का प्रयास करो।

तब अर्जुन पूछता है कि भगवान, मन को संभालने का क्या तरीका है। भगवान उसे बतलाते हैं कि कामनाओं और वासनाओं को कम करके, और मन को राग, भय एवं क्रोध से मुक्ति दिलाकर मन को संभाला जाता है। अर्जुन फिर पूछता है कि राग, भय, क्रोध और इच्छाओं के निराकरण के लिए कौन-सी विधि है? तब भगवान उसे प्रत्याहार के बारे में बतलाते हैं–

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.58॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.61॥

'जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगों को अपने कवच के भीतर समेट लेता है, वैसे ही जब पुरुष भी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा देता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है। अभ्यासी को चाहिए कि वह सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके, समाहित चित्त हुआ मेरे पारायण होकर ध्यान में बैठे। जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।'

आपको वह प्रसंग मालूम होगा जब गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों की धनुर्विद्या की परीक्षा ले रहे थे। उन्होंने पेड़ पर एक मिट्टी की चिड़िया को रखकर अपने शिष्यों से कहा कि संधान करके चिड़िया की आँख को तीर मारना है। वे एक-एक करके शिष्यों को बुलाते गये। हर एक से पूछते गये, 'तुमने संधान किया? बताओ, क्या देख रहे हो?' गुरु द्रोणाचार्य विद्यार्थी के उत्तर के आधार पर उसे सफल या

विफल घोषित कर देते थे। प्राय: सभी शिष्यों ने कहा कि हमें चिड़िया, उसके चारों ओर फल-फूल-पत्ते, आस-पास खड़े बंधु-बांधव, आसमान में उड़ते बादल, सभी कुछ दिखलाई दे रहा है। उनका यह उत्तर सुनकर गुरु द्रोणाचार्य ने उन्हें फेल कर दिया। केवल एक चेला उत्तीर्ण हुआ, जिसने कहा कि मुझे कुछ नहीं, केवल चिड़िया की आँख दिखलाई दे रही है।

इस घटना के माध्यम से गुरु द्रोणाचार्य यह जानना चाह रहे थे कि उनके विद्यार्थियों में कितनी मानसिक एकाग्रता है। उन्हें मालूम था कि जिसका मन स्थिर, केंद्रित, एकाग्र और शान्त है, उसका निशाना अचूक होगा। इसलिए उन्होंने विद्यार्थियों के उत्तर से ही जान लिया कि उनका निशाना सही होगा या गलत।

प्रत्याहार के सोपान

लोग आँखों को बंद करके ध्यान लगाने की कोशिश करते हैं, लेकिन असली ध्यान आँखों को खोलकर मन को एकाग्र रखते हुए होता है। हमारे गुरुजी ने बचपन में हमसे एक बात कही थी जो हमें आज भी याद है, 'देखो निरंजन! न तो हिमालय की कंदराओं में शान्ति है और न ही मुंगेर के बाजार में कोलाहल। जो कुछ है वह तुम्हारे भीतर है। अगर तुम्हारा मन स्थिर और शान्त रहेगा, तो मुंगेर बाजार के बीचोबीच भी तुम्हें कोई शोरगुल नहीं सुनाई पड़ेगा। अगर सुनोगे भी तो विचलित नहीं होगे। लेकिन अगर तुम्हारा मन अस्थिर, विचलित और अशान्त

है, तो हिमालय की कंदराओं और गुफाओं में भी उसे शान्ति नहीं मिलने वाली है। वहाँ पर भी वह उन्हीं कामनाओं और वासनाओं से पीड़ित होगा, जो उसे यहाँ पीड़ा दे रही हैं। इसलिए, अपने मन को संभाल लो।'

श्रीकृष्ण भी यही कहते हैं कि इस अभ्यास द्वारा तुम्हारे जीवन में जो मोह और दु:ख के कारण हैं, उन्हें तुम जान पाओगे। राग, भय, क्रोध एवं वासना ही मोह और दु:ख के कारण हैं। यही तुम्हारे मन को विचलित करते हैं।

योगदर्शन में एक शब्द आता है, 'प्रत्यय'। प्रत्यय का अर्थ होता है मन में एक बीज का पड़ना। जैसे हम धरती में बीज को रोपते हैं, वैसे ही जब मन में कोई विचार, संस्कार, चिंतन या व्यवहार प्रवेश करता है, तब प्रत्यय कहलाता है। जो भी ज्ञान मनुष्य को प्राप्त होता है, वह एक प्रत्यय के रूप में, एक स्मृति के रूप में होता है। आप यहाँ पर आज सत्संग में आए हैं, बाद में चले जाएँगे। लेकिन आपको यहाँ की कुछ चीजें याद रहेंगी, क्योंकि वह जानकारी एक प्रत्यय के रूप में आपके मन में स्थित हो गई है। इसी प्रकार हमें इन्द्रियों के माध्यम से विषयों के बारे में जो जानकारी प्राप्त होती है, वह जानकारी हमारे मन में प्रत्यय रूप में विद्यमान हो जाती है और वही मन को विचलित करती है। वही चीज बार-बार सामने आती है। दु:ख याद आता है, सुख भी याद आता है। चाहे दु:ख की स्थिति हो या सुख की, दोनों अवस्थाओं में ही मन अशान्त हो जाता है। इसलिये भगवान कहते हैं कि सबसे पहले प्रत्याहार द्वारा अपने मन को शान्त करो।

कायास्थैर्यम्—योग कहता है कि प्रत्याहार की सिद्धि को धीरे-धीरे प्राप्त करना है। सबसे पहले अपने शरीर को स्थिर बना दो, क्योंकि जब तुम्हारा शरीर शान्त हो जाएगा तब शरीर की इन्द्रियाँ भी धीरे-धीरे शान्त हो जाएँगी। इसलिए प्रत्याहार की पहली अवस्था को हमलोग कहते हैं, 'कायास्थैर्यम्' अर्थात् शरीर की स्थिरता को प्राप्त करना। शान्ति पाठ के समय आपसे कहा जाता है न, शरीर को शान्त और स्थिर बना लीजिए। लेकिन बहुत-से लोग उस दौरान भी अपने शरीर को हिलाने के फेर में रहते हैं, तीन-चार मिनट के लिए भी शरीर को स्थिर करना सम्भव नहीं हो पाता है।

कायास्थैर्यम् को सिद्ध करने के लिए शरीर को मूर्तिवत् बना दो। एक मिनट से शुरू करो, फिर उस अवधि को धीरे-धीरे दो, तीन, चार, पाँच, दस, पन्द्रह, बीस मिनट तक बढ़ाओ। जैसे-जैसे शारीरिक स्थिरता की अवधि बढ़ेगी और इन्द्रियों का सम्पर्क संसार से टूटेगा, वैसे-वैसे वे भी शान्त हो जाएँगी। यही बात श्रीकृष्ण ने आगे कही है कि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि, उसका मन शान्त और स्थिर हो जाते हैं। इन्द्रियों को पकड़ने का जो माध्यम है, वह है शरीर। इसलिए शरीर से ही शुरुआत हो।

श्वास-नियंत्रण—उसके पश्चात् आता है श्वसन प्रणाली पर नियंत्रण। श्वास मन की स्थिति को दर्शाती है। जो व्यक्ति शान्त और स्थिर है, अगर आप उसकी श्वास को देखोगे, तो वह धीमी, लम्बी और गहरी होगी। अगर व्यक्ति उत्तेजित है तो श्वास भी उत्तेजित हो जाएगी। अगर उत्तेजना या आक्रोश के समय हम अपनी श्वास को नियंत्रित कर पाते हैं, तो आक्रोश वहीं पर रुक जाएगा। भय की अवस्था में भी श्वास की गति तीव्र हो जाती है। अगर कभी भयभीत होते हो और देखते हो कि श्वास तेजी से चल रही है, तो श्वास को धीमी कर दो। एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट लम्बी और गहरी श्वास लो। तुम देखोगे कि मन का भय समाप्त हो जाएगा।

हमारी संस्कृति में इन सब चीजों के बारे में स्पष्ट रूप से बतलाया गया है, लेकिन इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। लोग सोचते हैं कि ये सब व्यावहारिक चीजें नहीं हैं, केवल दर्शन है। लोगों की इसी सामान्य गलतफहमी को दूर करने के लिए हम बार-बार निवेदन करते हैं कि हम गीता को धर्मग्रन्थ नहीं, जीवन का ग्रन्थ मानते हैं। इसमें जीवन को सुचारु ढंग से जीने की विधि स्पष्ट रूप से बतलाई गई है।

अन्तर्मौन—श्वास नियंत्रण प्रत्याहार का दूसरा चरण हुआ। जब हम शरीर और श्वास की गतिविधियों को स्थिर और शान्त कर पाते हैं, तब फिर मन में प्रवेश करते हैं। मन को पकड़ने का जो तरीका है, वह है विचारों के द्वारा। अपने मन में आने वाले विचारों के साक्षी बनो, उनको देखो। उनके बारे में सोचो मत,

केवल द्रष्टा बनो। मन में जो भी चिंतन हो रहा है, जो भी विचार आ रहा है, उसे देखते जाओ।

विचारों को नियंत्रित करने की इस विधि को अन्तर्मौन कहते हैं। इस विधि द्वारा जब विचार शान्त हो जाते हैं, तब भावनाओं को देखा जाता है। जो भावनाएँ उमड़ती हैं, उनको भी द्रष्टा बनकर शान्त किया जाता है।

जैसे एक बालक मचलता है तो उसकी माँ उसे गोदी में बैठाकर उसके सिर को सहलाते हुए कहती है, 'बेटा! सो जा, आराम कर,' वैसा ही कार्य हमें अपने मन के साथ करना होता है। लोग मन के साथ संघर्ष करते हैं, लेकिन योग कहता है कि मन के साथ संघर्ष नहीं, बल्कि मित्रता करो। तुम मन को अपना दास बनाना चाहते हो, पर अभी तो वह तुम्हारा स्वामी है। स्वामी को तुम दास बनाना चाहते हो, नियंत्रित करना चाहते हो, यह कैसे सम्भव है? इसीलिए आज तक प्रयास करते हुए भी कोई अपने मन को वश में नहीं कर पाया है। सब अपने मन के साथ कुश्ती करना चाहते हैं, इसीलिए सब मात खाते हैं। भगवान कहते हैं कि नहीं, बस इन्द्रियों को स्थिर कर दो। एक बार जब इन्द्रियाँ और मन स्थिर हो जाते हैं, तब तुम राग, भय, क्रोध और वासनाओं के कुप्रभावों से मुक्ति पाओगे। एक बार जब इनसे मुक्ति हो जाती है, तब जीवन में कोई कलह नहीं उत्पन्न होता।

कामना की कड़ी

तब अर्जुन पूछता है, 'भगवान! आप कहते हो कि जब इन्द्रियों का सम्पर्क विषयों के साथ होता है, तब मन भ्रमित हो जाता है। यह कैसे घटित होता है, थोड़ा समझाइये।' इसके उत्तर में भगवान कहते हैं–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥2.62॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥2.63॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण समझा रहे हैं कि इन्द्रिय तथा इन्द्रिय-विषयों में जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है, वह किस प्रकार मनुष्य को विचलित कर सकता है। विषयों का चिंतन करने से व्यक्ति में विषयों के प्रति आसक्ति हो जाती है। उदाहरण के तौर पर किसी कार को देखते हो, वह अच्छी लगती है, मन में सोचते हो कि कार खरीदने का समय आ गया है। आँखों ने एक पदार्थ को देखा। देखने के बाद मन में एक आकर्षण उत्पन्न हुआ। बाद में वह आकर्षण कामना का रूप ले लेता है, क्योंकि हम देखते हैं कि हमारे पास पैसा वगैरह सब कुछ है।

मान लो इस बीच में बेटी की शादी निश्चित हो जाती है या घर में कोई बीमार पड़ जाता है। पैसा वहाँ खर्च हो जाता है। इससे मन में निश्चित रूप से एक बेचैनी उत्पन्न होगी कि मैंने जिस धन का गाड़ी खरीदने के लिए संग्रह किया था, अब वह धन मेरे पास नहीं है। यहाँ पर एक निराशा आ जाती है, आक्रोश भी आ सकता है।

इसलिए भगवान कहते हैं कि विषय-सम्पर्क से कामना उत्पन्न होती है और उस कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। वे आगे कहते हैं कि क्रोध से अत्यन्त मूढ़ भाव उत्पन्न होता है। हम उस विषय के चिंतन में इतना डूब जाते हैं कि किसी और चीज का ख्याल ही नहीं रहता। मन में मूढ़ भाव उत्पन्न होने से स्मृति में भ्रम हो जाता है, जिससे अंत में बुद्धि का, ज्ञानशक्ति का नाश होता है। एक बार जब ज्ञानशक्ति का नाश हो जाए तब यही मान कर चलो कि मनुष्य अपनी स्थिति से गिर गया है, समाप्त हो गया है। आगे भगवान एक और चीज कहते हैं–

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥2.64॥

भगवान कहते हैं कि यह सब जरूर होता है, लेकिन जिस व्यक्ति ने अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है, वह हर प्रकार के आकर्षण-विकर्षण, राग-द्वेष से मुक्त हो जाता है। वह संसार के विषयों के बीच में विचरण करते हुए भी आन्तरिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है।

इस संसार में राग और द्वेष हर वस्तु, हर व्यक्ति से जुड़ा रहता है। आज आप किसी व्यक्ति को पसंद करोगे, कल नहीं करोगे। व्यक्ति वही है। किसी अच्छी चीज को घर में खरीदकर लाओगे, उसको सजाकर रख दोगे, लेकिन उसके बाद उसकी धूल झाड़ना भी भूल जाओगे। जिस प्रिय वस्तु ने तुम्हारी नींद हराम कर दी थी, उसे अपने घर में ले आने के बाद उस पर ध्यान भी नहीं जाता। यही राग-द्वेष का खेल है। लेकिन जब एक साधक मन की स्थिरता के लिए प्रत्याहार की साधना को सिद्ध करता है, तब वह राग-द्वेष के प्रभावों से अपने आपको मुक्त कर लेता है।

सतत् सजगता

यहाँ पर एक और संकेत देते हुए भगवान कहते हैं कि जब तुम्हारा मन स्थिर हो जाए, तब उस स्थिरता को कायम रखने के लिए हमेशा प्रयास करो। नहीं तो क्या होगा?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥2.67॥

भगवान सावधान करते हुए कहते हैं कि एक चीज का ख्याल रखना। इन्द्रियों को हमेशा अपने वश में रखना। अगर एक भी इन्द्रिय तुम्हारे नियंत्रण से मुक्त हो जाती है, तो वह तुम्हारे मन का हरण कर सकती है। जैसे समुद्र में अगर थोड़ी-सी भी हवा रहे, तो वह हवा नाव को हिला देगी। उसी प्रकार अगर हम किसी इन्द्रिय पर अंशमात्र भी नियंत्रण खो दें, तो वह पुन: मन को अपनी ओर खींच लेगी।

इन्द्रियों का स्वभाव शान्त नहीं, चंचल है। इसीलिए कृष्ण जी बार-बार कहते हैं कि ध्यान और सजगता के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में करो। धर्म-संगत कर्म करते रहो और अपने मन को नित्य, परमात्म तत्त्व से जोड़कर रखो, ताकि तुम्हारे मन में यह भावना उत्पन्न हो कि मैं कर्ता और भोक्ता नहीं हूँ, *'नाऽहं कर्ता हरि: कर्ता, हरि: कर्ता हि केवलम्।'* मन को मुझ में लगाकर रखो। जहाँ पर तुम्हारे मन में *'अहं कर्ता'* की भावना आएगी, वहाँ पर तुम शान्त अवस्था से दूर हो जाओगे। जहाँ पर तुम यह सोचोगे कि मैं ही सब चीजें भोग रहा हूँ और सब कुछ कर रहा हूँ, वहीं पर तुम अशान्त हो जाओगे।

हारमोनियम या कोई अन्य वाद्य अपने आपको स्वयं नहीं बजा सकता। हारमोनियम को बजाने वाला कोई और होता है। अगर बजाने वाला सही तरीके से हारमोनियम बजाए, तो उससे मंत्रमुग्ध करने वाले सुन्दर स्वर निकल सकते हैं। उसी तरह से तुम्हारे मन में यह विचार आना चाहिए कि मैं केवल एक वाद्य हूँ, जिसे कोई और बजा रहा है। करने वाला मैं नहीं हूँ, प्रभु ही मेरे से सब कुछ करवा रहे हैं।

–16 फरवरी 2012, शिवालय, मुंगेर

सारा जगत् एक रंगमंच

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

एक साधक के रूप में आपको जीवन में कुछ भी नहीं त्यागना है, बल्कि उसमें कुछ जोड़ना ही है। जीवन में उच्च चेतना अथवा आत्म-साक्षात्कार की उपलब्धि के दो मार्ग हैं। इनमें से एक को निवृत्ति मार्ग कहते हैं। यह त्याग और अभोक्तापन का रास्ता है, जो मात्र कुछ चुने हुए लोगों के लिये ही अनुकूल होता है। दूसरा प्रवृत्ति मार्ग कहलाता है, जिसे कर्म संन्यास भी कहते हैं।

अपने निहित कर्मों द्वारा ही आपको जीवन में सक्रिय होने की प्रेरणा प्राप्त होती है। इच्छा, वासना तथा महत्त्वाकांक्षा के प्रेरणास्रोत कर्म ही होते हैं। जीवन-यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व इन कर्मों का क्षय होना बहुत आवश्यक है। कर्मों की अभिव्यक्ति को नकारना बड़ा हानिकारक होता है। यदि कर्मों का दमन कर आप जीवन में कोई मार्ग अपनाते हैं, तो यह निश्चित मानिये कि आगे चलकर आपको विकट समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

यदि अपने कर्मों के फलस्वरूप आप धनवान् या विख्यात बनते हैं, तो इसमें कोई हानि नहीं है, परन्तु हमेशा एक बात याद रखिये कि आप जीवन में जैसी भी स्थिति में हैं, वह आपके पूर्व कर्मों की एक अभिव्यक्ति मात्र है। जैसे ही पूर्व कर्म विशेष क्षय होता है, उसके फलस्वरूप निर्मित स्थिति भी समाप्त हो जाती है। इसलिए विधायक तथा नकारात्मक, दोनों प्रकार के कर्मों के लिये आपके मन में स्वीकृति का भाव होना चाहिए, बल्कि आपका यह प्रयास होना चाहिए कि नकारात्मक कर्मों की अधिकाधिक जगह विधायक कर्म लें।

कर्म संन्यासी अपने जीवन में किसी भी वस्तु का त्याग अथवा निषेध नहीं करता, क्योंकि उसमें जीवन की गहरी समझ होती है। वह अपने कर्मों के फलस्वरूप जीवन की दिशा और लक्ष्य को नहीं भूलता। वह डटकर पैसा कमाता, अच्छा खाता-पहनता तथा जीवन की मौज-मस्ती का आनन्द लूटता है। वह अपने परिवार वालों को भी खूब प्यार करता है। कर्म संन्यासी के रूप में जीवन की हर वस्तु उसे नया अनुभव प्रदान करती है, परन्तु इस सबका तात्पर्य यह नहीं है कि एक क्षण के लिये भी उसका जीवनोद्देश्य उसकी आँखों से ओझल हो सकता है। जीवन की चकाचौंध उसे लक्ष्यच्युत नहीं कर पाती। वह जीवन के दु:ख-सुख में स्वयं को खोता नहीं है। यदि सुख मिलता है तो वह विनम्रतापूर्वक उसे स्वीकारता है और यदि दु:ख आता है तो भी वह अपना सन्तुलन बनाये रखता है, उससे विक्षुब्ध नहीं होता। जीवन की हर ऊँची-नीची परिस्थिति उसे कुछ सीखने का अवसर प्रदान करती है।

त्याग का मार्ग केवल उन्हीं लोगों के लिये सहज होता है जो अपने अधिकांश कर्मों को समाप्त कर चुके होते हैं। विशेष रूप से अत्यन्त गहराइयों में पैठे तीव्र कर्मों को तो वे समाप्त कर ही चुके होते हैं। त्याग का मार्ग उनके लिये ही सहज हो सकता है जिनमें महान् आत्मबल होता है। लेकिन बताइये, इच्छाओं और वासनाओं का बोझ लादे हुए बलात् त्याग-तपस्या का जीवन अपनाने में कहाँ की समझदारी है? दु:ख और तनावपूर्ण त्यागी जीवन से सन्तुलन और समस्वरता पूर्ण जीवन कहीं अधिक अच्छा है।

कुछ समय के लिये शान्त, एकान्त जीवन उसी प्रकार अच्छा लगता है जिस प्रकार आप अपनी दुखती, थकी आँखों को आराम पहुँचाने के लिये किसी अञ्जन अथवा सुरमे का प्रयोग करते हैं। परन्तु वहाँ भी दिन-प्रतिदिन के जीवन के झंझट तथा विचार आप पर आक्रमण तो करेंगे ही। जहाँ भी आप जायें, वे परछाई की तरह आपके साथ लगे रहेंगे, बल्कि जैसे ही आप आँखें बन्द कर मन को शान्त, एकाग्र करने का यत्न करेंगे, इस पिशाच मंडली का भयावह नृत्य आपके बन्द नेत्रों के समक्ष होने लगेगा। शान्ति और एकाग्रता तो दूर रही, आप अत्यन्त व्यथित तथा विक्षुब्ध हो उठेंगे। इसलिये बेहतर यही होगा कि आप दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में सक्रिय भागीदारी करते हुए अपनी इच्छाओं, वासनाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं को

अभिव्यक्ति प्रदान कर उनकी इति करें। ऐसा न हो कि आप निर्जन, एकान्त गुफा में मात्र उन वस्तुओं का चिन्तन करते रहें, जिन्हें आप छोड़कर आये हैं।

त्याग उनके लिये कतई श्रेयस्कर नहीं हो सकता जो अपने कर्मों से बन्धे हुए हैं। उनकी समस्या का उपयुक्त समाधान जीवन की हर गतिविधि में सक्रिय भागीदारी ही हो सकती है। सर्वप्रथम 'स्व' की चेतना को विकसित कीजिये। जीवन की हर घटना और परिस्थिति के प्रति साक्षीभाव जाग्रत कीजिये, ताकि आप यह समझ सकें कि जीवन की हर परिस्थिति आपको क्या सीख देना चाहती है। इस तरह आप अपनी शक्ति और कमजोरी को पहचानेंगे। जीवन के हर उतार-चढ़ाव के प्रति आपकी प्रतिक्रिया सन्तुलित तथा उपयुक्त होगी। आप वस्तुओं तथा व्यक्तियों के प्रति अपने लगाव, उद्वेग, प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, तिरस्कार आदि की अभिव्यक्ति को जानेंगे, समझेंगे। आप एक साथ इनके भोक्ता और साक्षी बनेंगे। स्वयं को जानने और उच्च चेतना को जाग्रत करने का यही एकमात्र राजमार्ग है।

आप अपने कर्मों को अभिव्यक्ति तो प्रदान करें, परन्तु इसके साथ-ही-साथ यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि नये कर्मों का संचय रोकें, ताकि वे आपके भविष्य को प्रभावित न कर पायें। यह एक विकट समस्या है। एक ओर तो कर्म विभिन्न रूपों में प्रकट होकर निष्प्रभावी होते हैं, परन्तु दूसरी ओर नये कर्म संचित होते रहते हैं। इसका समाधान यही है कि आप अपने पूर्व कर्मों को तो निःशेष करें ही, पर नये कर्मों का संचय न होने दें।

यह केवल तभी सम्भव है जब आप विश्व को एक विशाल रंगमंच तथा स्वयं को इसका अभिनेता समझें, जिसमें आप अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। आप एक ही समय में किसी के पति, पत्नी, माता, पिता, पुत्र, व्यापारी, राजनेता, अधिकारी अथवा अधीनस्थ कर्मचारी होते हैं। इस तरह आपकी अनेकानेक भूमिकायें होती हैं। आप अपनी किसी भी भूमिका को भूलते नहीं, बल्कि प्रत्येक में रस लेते हैं। परन्तु याद रखिये इन सबके ऊपर आपकी एक और भूमिका होती है, जिसमें आप स्वयं को अन्य सभी प्रकार की भूमिकाओं से अलग रखते हैं। आपकी यह भूमिका अन्य सभी भूमिकाओं से निर्लिप्त रहती है। यह भूमिका अन्य भूमिकाओं के परिणाम की चिन्ता नहीं करती, मात्र उनका मजा लेती है।

जैसे रंगमंच का अभिनेता विभिन्न भूमिकाओं में होने वाले सुख-दुःख से प्रभावित नहीं होता, आप भी जीवन के हर उतार-चढ़ाव से अप्रभावित रहिये। अपनी भूमिका को कर्तव्य मानते हुए उसमें रस लीजिये। प्रत्येक भूमिका का अपनी क्षमता अनुसार निर्वाह कीजिये। किसी भी दुःख-सुख से अपना सन्तुलन नष्ट न होने दीजिये।

यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति से मिलें जिसने स्वयं को अपने पेशे तथा कार्य में पूरी तरह डुबा दिया है तथा जो परिणामों की जरा भी परवाह नहीं करता, तो वह आपको बतायेगा कि उसे अपने कार्य से बड़ा आनन्द मिलता है तथा उसके अच्छे-बुरे

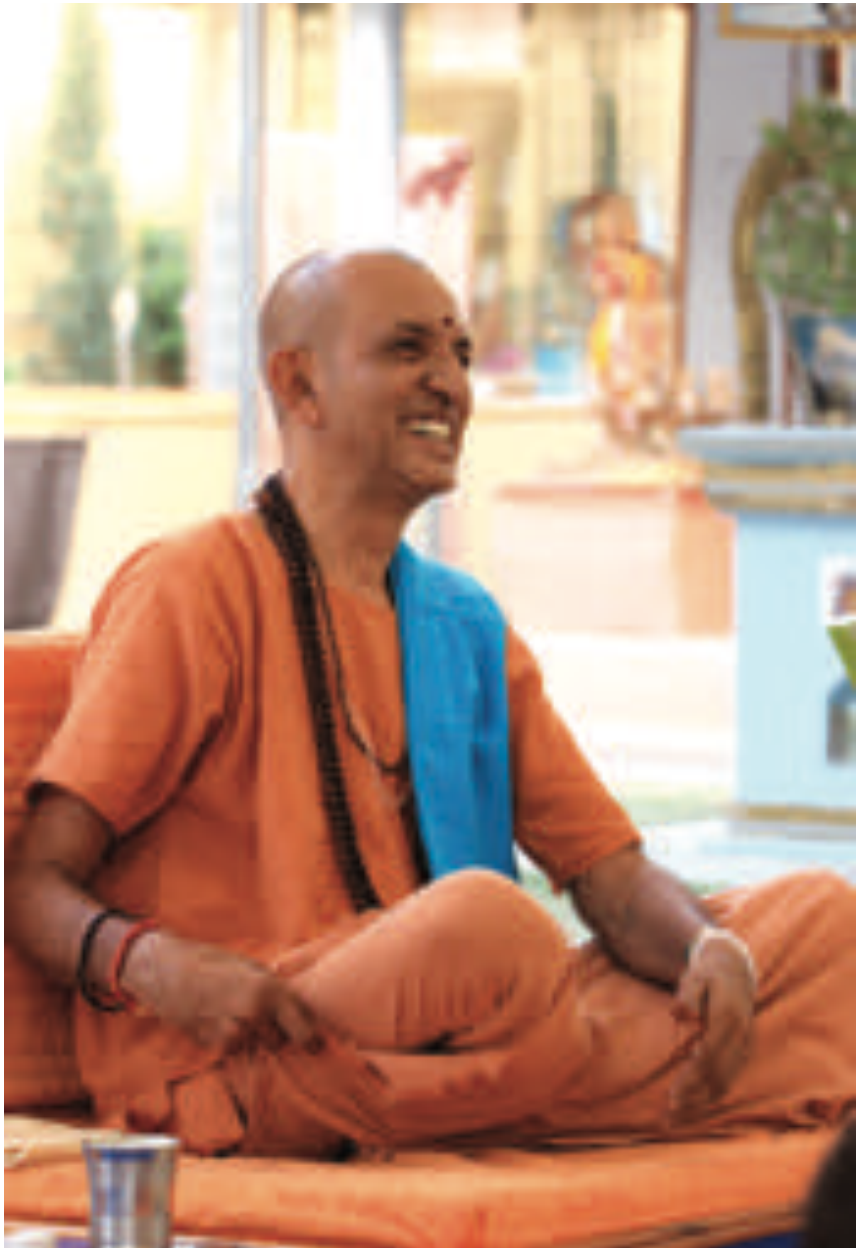

परिणाम उसे जरा भी व्यथित नहीं करते। उसके लिये उसका कार्य ही सर्वोच्च प्रेम, भक्ति, समर्पण और त्याग होता है। यही उसके जीवन की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति होती है। चूँकि वह अपने कार्य से आनन्द और संतुष्टि प्राप्त करता है, उसमें फलाफल के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है। वह नाम, यश, धन और पद की आकांक्षा नहीं करता।

अपने कर्तव्य तो अवश्य कीजिये, परन्तु उनके फल की चिन्ता मत कीजिये। निश्चय ही कर्तव्य कर्मों द्वारा लाभ होंगे, परन्तु उनसे अपने कर्मों को प्रभावित न होने दीजिये। जीवन के हर क्षेत्र में निष्काम भाव से कर्म कीजिये। आप अधिक धन, नाम और यश कमाने के लिये काम नहीं करते हैं। आप अपने पति, पत्नी तथा बच्चों से इसलिये प्यार नहीं करते कि बदले में आपको भी उनसे प्यार मिलेगा। इसी प्रकार आप परोपकार के कार्य भी मान-सम्मान और यश के लिये नहीं करते। आप अपने सभी काम अपना उत्तरदायित्व समझकर कर्तव्य भावना से करते हैं।

अपने कार्यों से आपको जो फलाफल मिलता है, वह आकस्मिक होता है। आप स्वयं को अपने कार्यों के फलाफल को भोगने से रोकते नहीं हैं। आप उनका अधिकतम उपयोग करते हैं। परन्तु वैराग्य भावना के कारण कर्मों का फलाफल न तो आपको प्रभावित कर सकता है और न ही आपके जीवन का केन्द्र हो सकता है। महत्त्वपूर्ण बात कर्मों के फलस्वरूप आनन्द की प्राप्ति नहीं है, बल्कि अपने कर्मों को चेतना के साथ, कर्तव्य भावना से, पूरी क्षमता और जिम्मेदारी से करना है। अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कर्म करते समय उसके फल के प्रति उदासीन रहिये और अपना पूरा ध्यान कार्य पर केन्द्रित कर दीजिये। तब आपको जो फल प्राप्त होगा वह अपेक्षा के साथ किये गये कर्मों के फल से कहीं अधिक मधुर तो होगा ही, आप उसके आनन्द का उपभोग करते हुए भी बन्धन में नहीं पड़ेंगे।

आश्चर्य की बात तो यह है कि हमारे जीवन में जो भी दु:ख है उसका मुख्य कारण हमारी फलासक्ति है। हमारी समस्त ऊर्जा और विचारशक्ति कर्मों के अच्छे-

बुरे परिणाम पर लगी रहती है। राग के पीछे दु:ख लगा रहता है क्योंकि जिस वस्तु से हमारा लगाव होता है, उसके नष्ट हो जाने की चिन्ता हमें हरदम परेशान करती है। भले ही आपको किसी कर्म का अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो जाये, परन्तु उसके गुम हो जाने की आशंका आपको चैन से नहीं बैठने देती। इसके अलावा अपेक्षित फल द्वारा आप उतना आनन्द प्राप्त नहीं कर पाते जितनी कल्पना की थी।

इससे दु:ख तो होता ही है, आप अपने निकट के लोगों पर अपना दु:ख व्यक्त करते हैं, जिसका उन पर भी अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। इन सभी बातों से अधिकाधिक संस्कार संगृहीत होते हैं। अब स्वयं को जितना अधिक कुकर्म में डालेंगे, आपके संस्कार उतने ही तीव्र होंगे और वह क्षण भी आयेगा जब आप पूरी तरह टूट जायेंगे। परन्तु यदि आप वैराग्य और निष्काम भाव से अपने कर्मों को अभिव्यक्त करें तो आपके कर्म नि:शेष भी होंगे और नये कर्मों का निर्माण भी नहीं होगा।

कर्मों का यह दर्शन बड़ा जटिल है, परन्तु आपके जीवन में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, इसीलिये इसे अच्छी तरह समझना जरूरी है। आप जो कुछ करते हैं उससे कर्मों का निर्माण होता है और जब आप उन कर्मों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, तब पुन: नये कर्म निर्मित होते हैं। ये आपके जीवन, आपके व्यक्तित्व और आपकी भावनाओं को प्रभावित करते हैं। इसलिये अपने कर्मों का चुनाव पूरी सावधानी के साथ करना चाहिये। पुन: जो कर्म आप करते हैं, उनका उतना महत्त्व नहीं होता जितना उनके साथ जुड़ी आपकी मनोवृत्ति का होता है। यदि वे कर्म फलाकांक्षा द्वारा प्रेरित नहीं हैं, तो उनके द्वारा आप नये कर्मों को निर्मित नहीं होने देते और जीवन के हर क्षेत्र में पूर्ण रूप से भाग लेते हुए उसके लाभों का पूरा आनन्द उठाते हैं।

एक ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि कर्मों के फलाफल के प्रति अनासक्ति, नि:स्वार्थता और समझदारी हमारे भीतर से जाग्रत होनी चाहिए। कोई भी बाहरी व्यक्ति यह न जान सके कि आप क्या सोच रहे हैं या जीवन के प्रति आपका दृष्टिकोण कैसा है। ये बातें व्यक्तिगत होती हैं। बाहर से आपमें तथा दूसरे लोगों में अन्तर नहीं होता। आप जीवन का भरपूर आनन्द लेते हैं। कुछ भी त्यागते नहीं। आप न त्यागी और न उदासीन साधु लगते हैं। जिस प्रकार अन्य लोग समाज के घटक होते हैं, आप भी समाज के सामान्य सदस्य लगते हैं।

यह तो बाहरी बात हुई, परन्तु आपके भीतर स्व-परिष्कार चलता रहता है। गहरी समझदारी और उच्च चेतना की कैंची द्वारा आप सभी जीवन विरोधी भावनाओं को कतर डालते हैं। समूचा जीवन आपके लिये कर्तव्य क्षेत्र बन जाता है। आप उसमें उत्साहपूर्वक हिस्सा लेते हैं। आप अपने कर्तव्यों के अच्छे-बुरे फल की न तो अपेक्षा रखते हैं और न उनसे बचने का प्रयास करते हैं। यह सही है कि ऐसी मानसिकता एक दिन में प्राप्त नहीं हो सकती। यह प्रक्रिया जीवनपर्यन्त चलती रहती है और इसमें आपकी सफलता आपकी निष्ठा एवं जीवन के प्रति दृष्टिकोण पर निर्भर रहती है।

महामंत्र का माहात्म्य

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

द्वापर युग के अन्त में नारद ऋषि ब्रह्माजी के पास गये और पूछा, 'हे प्रभु! मैं कलियुग का सुगमता से कैसे सन्तरण करूँ?'

ब्रह्माजी ने कहा, 'तुमने अच्छा प्रश्न किया। उस रहस्य को सुनो जो सभी वेदों में गुप्त है और जिससे मनुष्य संसार को पार कर सकता है। नारायण के नामों के उच्चारण मात्र से कलि काल के सारे बुरे प्रभाव नष्ट हो जाते हैं।'

नारद ऋषि ने आगे पूछा, 'हे भगवन्! ये नाम क्या हैं?'

ब्रह्माजी ने कहा, '*हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे*–ये सोलह नाम कलि के बुरे प्रभावों को नष्ट कर देते हैं। सारे वेदों में इससे बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। ये सोलह नाम उन आवरणों को दूर करते हैं जिन्होंने जीवों को आवृत्त कर रखा है। बादलों के हट जाने पर जिस तरह सूर्य विभासित हो जाता है, उसी तरह आवरण के दूर हो जाने पर परमात्मा अपनी महिमा में चमक उठता है।'

नारद जी ने कहा, 'हे प्रभु, इस नाम-जप के साथ कौन-कौन से नियमों का पालन करना चाहिए?' ब्रह्माजी ने कहा, 'नारद, इसके लिए कोई नियम नहीं है। जो भी व्यक्ति इन मन्त्रों का साढ़े तीन करोड़ बार जप करेगा, वह सारे पापों से

मुक्त हो जायेगा। वह सभी बन्धनों से स्वतन्त्र हो जायेगा और भगवान में विलीन होकर नित्य-सुख एवं अमृतत्व को प्राप्त कर लेगा।'

जीव की सोलह कलाएँ हैं, उनके अनुसार ही इस महामंत्र में सोलह नाम हैं। अखण्ड कीर्तन के लिए यह उत्तम है। यदि प्रतिदिन आप बीस हजार बार इस मन्त्र का जप करें, तो आप पाँच वर्ष में साढ़े तीन करोड़ जप पूरा कर लेंगे। आप इस मंत्र का कीर्तन तथा जप भी कर सकते हैं। आप नोटबुक में इसका लिखित जप भी कर सकते हैं।

परमात्मा का भजन किसी भी अवस्था में, जाने अथवा अनजाने में, सावधानीपूर्वक अथवा असावधानीपूर्वक—किसी भी तरह किया जाए, वह अवश्य ही वांछित फल प्रदान करता है। परमात्मा के नाम की महिमा तर्क-वितर्क अथवा बुद्धि से स्थापित नहीं की जा सकती। इसे केवल भक्ति, श्रद्धा तथा जप से ही अनुभव किया जा सकता है। प्रत्येक नाम में अनगिनत शक्तियाँ निहित हैं। नाम की शक्ति अमोघ है। इसकी महिमा अवर्णनीय है। नाम का प्रभाव तथा इसकी गुप्त शक्ति अथाह है।

उपर्युक्त विधि से ईश्वर के नामों के जप द्वारा आप सभी ईश्वर-चैतन्य प्राप्त करें! ईश्वर के नामों के लिए आपमें सच्ची प्रीति उत्पन्न हो!

कर्म, कर्मक्षय और ईश्वर

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मनुष्य नए कर्म संचित किए बिना अपने कर्मों का क्षय कैसे कर सकता है?

कर्मों का क्षय करने से पहले उसे मालूम होना चाहिए कि प्राकृतिक कर्म क्या है और अप्राकृतिक कर्म क्या है। कर्म कहते किसको हैं? समाज तुमको बतलाता है, 'ऐसा मत करो, वैसा मत करो। इतने बजे सोओ, इतने बजे उठो, यह मत खाओ, वह मत खाओ। उसके साथ शादी मत करो, इसके साथ शादी करो।' यह कर्म नहीं है। यह प्रथा है, इसका कोई फल नहीं मिलता। अगर इस प्रथा को मानो तो ठीक, नहीं मानो तो मत मानो। प्रथा, रिवाज, जो भी कहो, समाज में चला आया है।

वस्तुत: कर्म का सम्बन्ध धर्म से है, मन के अन्दर काम, क्रोध, लोभ, इच्छा से है। असल में जब तुम कर्म शब्द का उपयोग करते हो, इसका मतलब तुम्हारा सामाजिक रिवाज या सामाजिक व्यवहार नहीं है। किसी भी तरह के सामाजिक व्यवहार से सामाजिक संस्कार नहीं बनते और उस ओर से तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। उदाहरण के लिए मैं अपने बारे में बोलता हूँ। मैं पीता था। क्या तुम सोचते हो इससे मेरा कर्म बना है? नहीं। वह एक परम्परा थी मेरे परिवार में, सभी पीते थे। मेरे परिवार में सभी मांस खाते थे, हम लोग मूलत: मांस खाने वाले थे। मुझे कभी पता नहीं था कि व्यक्ति को मांस नहीं खाना चाहिए। क्या तुम्हारा यह मतलब है उससे कर्म उत्पन्न हुआ है, जिसके लिए मुझे बहुत सारा दण्ड भुगतना पड़ेगा? नहीं। तुम सबसे पहले यह देखो कि कर्म क्या है और क्या कर्म नहीं है। कोई भी कार्य, अगर तुम पर समाज द्वारा समय-समय पर थोपा जाता है, स्थिति के अनुसार, तुम्हारे स्थानीय धर्म के अनुसार तो वह कर्म नहीं है। धर्म का लक्षण महाभारत में बताया गया है–

धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहम्।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

महाभारत कहता है कि धर्म के दस लक्षण हैं। धर्म का मतलब जो करना चाहिए। अधर्म का मतलब जो नहीं करना चाहिए। धर्म के जो दस लक्षण हैं उसी के आधार पर कर्म बनता है। उस कर्म का आदमी को फल मिलता है। इस जन्म में मिलता है, दूसरे जन्म में मिलता है, तो तीसरे जन्म में मिलता है। उसमें कुछ कर्मों का तुम पुरुषार्थ के द्वारा क्षय कर सकते हो, कुछ कर्मों का नहीं। गुरु कृपा से शराब छूट सकती है, मांस छूट सकता है, मगर मनुष्य के अन्दर के जो कर्म हैं उनमें कुछ कर्म छूटते नहीं, भोगना पड़ेगा उन्हें। जब तुम गेहूँ या धान की फसल

काटते हो तब वह सम्भावित बीज उत्पन्न करता है। तुम उसे फिर से बोते हो, वह अंकुरित होता है, उगता है। तुमको बार-बार फसल काटनी पड़ेगी। उसका कोई दूसरा उपाय नहीं। कर्म का भोग अनिवार्य है, बस थोड़े कर्मों को पुरुषार्थ से हटा सकते हो।

तुम्हें कर्म के बारे में तकनीकी परिभाषाओं पर नहीं जाना चाहिए। कर्म तो कर्म है। कुछ ऐसे कर्म होते हैं जिन्हें तुम्हें भुगतना पड़ता है। बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। तुम्हें इस बात की चिन्ता भी नहीं करनी चाहिए कि यह संचित कर्म है या प्रारब्ध कर्म। यह तो तकनीकी विभाजन है, जो हम कभी-कभी चीजों को समझाने के लिए करते हैं। हम इसे पहला क्षेत्र, दूसरा क्षेत्र या तीसरा क्षेत्र कहते हैं, लेकिन वस्तुत: एक ही क्षेत्र है। कर्म तो कर्म है।

कर्म एक बीज के समान है, धान का बीज, गेहूँ का बीज, धनिया का बीज, भाजी का बीज, सब बीज समान हैं, वे बार-बार उगते हैं। कर्मों के कारण ही हम अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार कार्य नहीं कर पाते। यह कहना अहं भाव होगा कि अगर मैं अच्छे कर्म करूँगा तो मेरे बुरे कर्म कट जायेंगे। हालाँकि यह सत्य है कि जब तुम अच्छे कर्मों को करते हो तो तुम्हारे बुरे कर्म संतुलित होते हैं, पर प्रश्न है कि क्या तुम अच्छे कर्मों को करने के लिए स्वतन्त्र हो? नहीं। तुम्हारे भीतर कोई है जो तुम्हारा मार्गदर्शन करता है कि तुम्हें क्या करना है और क्या नहीं। कहा गया है– *त्वया हृषीकेशेन हृदयस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि*–मैं अपने भीतर बैठे हुए भगवान हृषीकेश के आदेशों के अनुसार चलता हूँ।

जीवन का नियंता

हृषीकेश का मतलब है इन्द्रियों के स्वामी, आन्तरिक भगवान। तुम मेरे हृदय में हो। जैसा तुम कहते हो मुझसे, मैं वैसा करता हूँ। हम सभी के हृदय के अन्त:पुर में रहने वाली एक देदीप्यमान् आत्मा है, एक चेतन आत्मा है, एक बुद्धिमान् आत्मा है, हमेशा सजग आत्मा है। उसे तुम 'मैं' कहकर बुलाते हो। यह अहं भाव वाला मैं नहीं है, पर ब्रह्माण्डीय मैं है, ज्योति। इसी के द्वारा कर्मों का क्षय हो सकता है, इसी के द्वारा कर्मों को संतुलित किया जा सकता है। अगर आदमी सोचता है कि वह स्वतन्त्र है तो वह गलत है। अगर आदमी सोचता है कि वह अच्छे कार्य कर सकता है तो वह भ्रम में है। हम कठपुतली के समान हैं–

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं ॥

दारु योषित का मतलब होता है लकड़ी की छोकरी। संस्कृत में कठपुतली को दारुयोषित कहते हैं। शिवजी पार्वती जी से कहते हैं, गोसाईं सबको कठपुतली की तरह नचा रहे हैं। यहाँ गोसाईं शब्द का प्रयोग हुआ है, गो माने इन्द्रियाँ, साईं का मतलब होता है स्वामी, अर्थात् इन्द्रियों के मालिक। उसको गोसाईं कहते हैं, उसी को गोविन्द भी कहते हैं। इन्द्रियों के स्वामी गोसाईं हैं, गोविन्द हैं, और ये सबको नचा रहे हैं, जैसे आदमी कठपुतली को नचाता है। वह निर्देशक है, वह हर कहानी का लेखक है, वह हर योजना का चिन्तक है, वह रचनाकार है, यही अंतिम सत्य है।

जब तक तुम्हारे पास जवानी है, खूब सारा पैसा और बहुत-से दोस्त हैं, तुम्हें पता नहीं चलता है। जब आदमी खुश होता है, उसके पास बहुत सारा पैसा होता है, वह शिक्षित होता है, तब वह बहुत शक्तिशाली होता है। वह कुछ भी खरीद सकता है, कुछ भी कर सकता है। वह सत्य के बारे में नहीं सोचता। पर फिर भी एक समय आता है जब वह सोचना शुरू करता है, 'क्या मैं ही अपने कर्मों, अपनी परिस्थिति का मालिक हूँ? क्या मैं खुद का मालिक हूँ?' तब उसे समझ में आता है, 'मैं खुद का मालिक नहीं हूँ। मैं अपनी श्वास प्रणाली पर किस प्रकार नियंत्रण कर सकता हूँ? क्या मैं अपने रक्तवाहिका तन्त्र, पाचन तन्त्र, तन्त्रिका तन्त्र, पेशी-तन्त्र, उत्सर्जन तन्त्र या मानसिक प्रणाली का नियंत्रण करता हूँ?' अगर यह स्थिति है तो तुम कैसे कह सकते हो कि तुम कर्मों के कर्त्ता हो?

आखिर तुम कौन-सा कर्म कर सकते हो? तुमको तो पता भी नहीं चलता कि भोजन का पेट में जाकर क्या होता है, मल कैसे बनता है। तुम कैसे हँसते हो? तुमको मालूम है तुम कैसे सोचते हो? क्या तुम विचार-प्रक्रिया को समझा सकते हो? तुम सोचने को केवल आधुनिक मनोविज्ञान के पारिभाषिक शब्दों में समझा सकते हो जो अपूर्ण है। सोचना एक प्रक्रिया है जो तुम्हारे अंदर में चल रही है। यह कौन कर रहा है? मैं तुमसे बात कर रहा हूँ। क्या तुम समझ रहे हो? क्या तुम

बता सकते हो कि समझ क्या है? यह कैसे घटित हो रहा है? तो तुम कैसे कह सकते हो कि तुम परिस्थिति के मालिक हो? तुम किसी परिस्थिति के मालिक नहीं हो। अपने खुद के शरीर के भी मालिक नहीं हो। इसलिए तुम्हें सबसे पहले यह खोजना होगा कि इस शरीर, मन और ज्ञान का मालिक कौन है। तुम्हारे इस जीवन का स्वामी कौन है?

तुम्हारा जन्म कैसे हुआ? नौ महीने तुम अपनी माँ के गर्भ में रहते हो। गाय रहती है, गधा रहता है, साँप रहता है, मुर्गी रहती है, सब कोई रहते हैं। वे बाहर आते हैं, बढ़ते हैं और मर जाते हैं। तुम गर्भ में बराबर दो सौ सत्तर दिनों में रूप ग्रहण करते हो। तुमने यह कानून नहीं बनाया। तुम्हारे माँ-बाप या तुम्हारे दादा ने यह कानून नहीं बनाया। इसलिए तुम्हें पता होना चाहिए, कौन परिस्थिति का नियंत्रक है? सूत्रधार कौन है? जब तुम सूत्रधार का पता लगाने जाते हो तब केवल एक शब्द आता है जिसे कहते हैं—भगवान। तुम राम या गोविन्द भी बोल सकते हो, वह नाम तो तुमने उसे दिया है। उसका कोई नाम नहीं है।

तुम एक अक्षर लिखते हो और कहते हो 'क'। तुम 'क' क्यों बोलते हो, 'ख' बोलो? पर तुमने उसे एक नाम दिया है 'क'। इसी प्रकार तुमने भगवान को एक नाम दिया है। अब आगे बढ़ो और पता लगाओ कि वह कौन है और क्या करता है। अगर तुम पुराण पढ़ोगे, तो उसमें ऋषि मार्कण्डेय की कथा आती है, जिन्होंने कमल की नाल के अन्दर से ब्रह्म लोक में प्रवेश किया। उन्होंने देखा कैसे ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्त्ता ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की, कैसे शिव उसे नष्ट करते हैं, कैसे विष्णु उसकी देखभाल करते हैं। कैसे अलग-अलग स्तरों पर सूर्य और चन्द्र विद्यमान हैं। पर आखिर में उन्होंने भी यह अनुभव किया कि तुम इसके अन्त को नहीं पा सकते, तुम इस सूत्र के अन्त की अनुभूति नहीं कर सकते। तो उनके नहीं मिलने पर वे बाहर आए।

उन्होंने कहा, 'इस सूत्र का कोई अन्त नहीं है। किसको परवाह है कि किसने यह ब्रह्माण्ड बनाया। किसको परवाह है कि उसने क्यों इसे बनाया और कैसे इसको बनाया। इसके बारे में चिन्ता मत करो।' उन्होंने एक सुन्दर कल्पना की, एक नवजात शिशु की, वह वट के पत्ते पर लेटा हुआ है और अपने पाँव के अँगूठे को अपने मुँह में लिये हुए है। उसे बालमुकुन्द कहते हैं। कृष्णशतकम् में वे कहते हैं—

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं, बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

मार्कण्डेय जी का साहसिक काम वहाँ समाप्त हो गया। ऐसा हर किसी के साथ हुआ है। मेरे साथ भी हुआ शंकराचार्य, रामानुजाचार्य की सब किताबों को पढ़ने के बाद। जब मैं किताबें पढ़ रहा था, यहाँ तक कि बाईबिल भी पढ़ी, कुरान

भी पढ़ा, मैंने सोचा, कम-से-कम मुझे कुछ विचार भगवान के बारे में आएगा। फिर मैंने पाया, कुछ भी काम नहीं कर रहा है! मैं बहुत बोल सकता हूँ भगवान के विषय में, लेकिन बातों में क्या रखा है? मैं घण्टों बोल सकता हूँ, लिख सकता हूँ। पर मुझे क्या मालूम है तुम समझे या नहीं? तब मैंने कहा, बन्द करो, किताबों को फेंक दो, वे मेरे किसी काम की नहीं हैं। किताब माने वेद, बाइबिल, कुरान आदि। अगर तुमको भगवान से मिलना है तो उसमें लौ लगानी चाहिए।

अगर है शौक मिलने का तो हरदम लौ लगाता जा ।
जलाकर खुदनुमाई को भसम तन पर लगाता जा ॥

अगर तुम भगवान को पाना चाहते हो तो तुम्हारा मन हमेशा-हमेशा वहीं होना चाहिए। अगर तुम अपनी बीवी के साथ हो या अपने बच्चे के साथ हो, फिर भी मन हमेशा वहाँ होना चाहिए। लौ, माने लगन, लौ का मतलब होता है, जैसे दिया जलता है, जैसे बत्ती जलती है, जलती रहती है, एक ही तरह। वह जलती रहती है, तुम उसकी लौ को देख सकते हो।

वह लौ क्या है? वह एक चीज नहीं है। उसमें अनेक घटनाक्रम हैं। यदि तुम उस लौ का फोटो खींचो, तो तुम्हें एक क्रम दिखायी देगा। वहाँ नैरन्तर्य नहीं है, एक अनुक्रम है जहाँ एक के बाद दूसरा क्रम, तीसरा क्रम, चौथा क्रम चलता रहता है। लौ कहने का मेरा तात्पर्य यही है। वह एक फिल्म के समान है जिसमें अलग-अलग फ्रेम हैं। जब वह क्रम एक गति से चलता है तब वहाँ नैरन्तर्य आता है। लौ उसको बोलते हैं। लौ मन के समान है, विविध क्रमों का सातत्य। विचार मन की एक उपज है, विचार मन नहीं है। भावना मन की एक उपज है, मन नहीं है। एक कल्पना मन की उपज है, वह मन नहीं है। इसी प्रकार यह प्रकाश सूर्य की उपज है, सूर्य नहीं है।

तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि विचार ही मन है। विचार मन द्वारा उपजते हैं। मन को समय के साथ जोड़ना पड़ेगा। मन की कल्पना कणों के रूप में करनी चाहिए। जैसे तुम प्रकाश के कणों, फोटॉन्स आदि को देखते हो, उसी तरह मन को भी कण के रूप में, समय के संदर्भ में देखना चाहिए। मन और समय दोनों

साथ चलते हैं, क्योंकि समय मन का एक पक्ष है। जब देश, काल और वस्तु एक साथ आते हैं, तब इन तीनों की समष्टि को मन कहते हैं। जब यह एक क्रम में चलता है तब इसे लौ कहते हैं। तुम्हारी सजगता सदा उस पर केन्द्रित होनी चाहिए।

मान लो, तुम्हारी एक बहुत गम्भीर समस्या है। तुम खाते हो, सोते हो, शौच जाते हो, ऑफिस जाते हो या काम पर जाते हो, दुकान पर जाते हो, दोस्त से मिलते हो, हर समय वह समस्या तुम्हारे मन में कहीं-न-कहीं घूमती रहती है। ऐसे ही हमेशा भगवान का ख्याल बना रहना चाहिए। जो व्यक्ति इस प्रकार भगवान में रम गया है, वह कर्म करेगा, उनके परिणामों को भुगतेगा और काटेगा, पर वह उससे प्रभावित नहीं होगा। तब वह सब कुछ एक वीडियो फिल्म की तरह देखता है। वह जो भूमिका निभा रहा है, उसका साक्षी बन जाता है।

जीवन का शाश्वत नियम

कर्मों का कोई अंत नहीं है। जीवनमुक्ति की अवस्था में भी कर्म होते हैं। अगर तुम मुक्त भी हो गये हो तब भी तुम्हें कर्म करने होते हैं। अगर तुम भगवान के अवतार भी हो तब भी तुम्हें कर्म करने होंगे। क्राइस्ट, राम, कृष्ण, मुहम्मद, सबने कर्म किये। मेरे भी कर्म हैं और तुम्हारे भी कर्म हैं। कर्म मुक्त कोई नहीं है। जब तक तुम्हारा शरीर है, तब तक कर्म है। जब तक तुम प्रकृति के अंश हो, तुम्हारे कर्म हैं। मुक्त होने पर भी तुम प्रकृति के अंश बने रहते हो। विदेहमुक्ति पाने के बाद भी 21 दिनों तक कर्म रहते हैं।

अस्तित्व ही आखिरी कर्म है। क्रिया नहीं, अस्तित्व आखिरी कर्म है। केवल तुम हो, यह अपने आप में एक कर्म है। मेरे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी अपने अन्तिम 21 दिनों में केवल जिन्दा थे। किसी ने कहा, 'स्वामीजी, भोजन'। वे चम्मच से ले लेते थे। 'स्वामीजी पानी' वे पी लेते थे। इक्कीस दिनों के बाद जब अस्तित्व का आखिरी कर्म, जीवन का समन्वय समाप्त हुआ, उन्होंने शरीर त्याग दिया। आदमी कर्म के बिना जीवित नहीं रह सकता। अगर तुम्हारे कर्म आज खत्म हो जाएँ, कल तुम चले जाओगे, हरि ॐ। जब तक तुम इस नाटक का आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तब तक कभी कर्मों से छुटकारे के लिए मत सोचो।

पुराणों में इसका सुन्दर वर्णन है। महाभारत में कर्म के ऊपर बहुत चर्चा है, भीष्म पर्व में तथा कई अन्य स्थानों पर। तुम्हें कर्म को समझना पड़ेगा, क्योंकि कर्म तो नमक है सृष्टि का। मनुष्य ही नहीं, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारे भी कर्म कर रहे हैं। ग्रह चल रहे हैं, जन्म ले रहे हैं, मर रहे हैं। वहाँ क्रिया है, वहाँ वृद्धि है, वहाँ क्षय है। वे कर्म कर रहे हैं, क्योंकि वे एक नियम का पालन कर रहे हैं। चन्द्रमा नियम का पालन करता है, इसलिए ज्योतिषी या खगोलज्ञ आज से दस हजार साल बाद होने वाले चन्द्र ग्रहण की भविष्यवाणी कर सकते हैं। वह नियम

को समझता है, इसीलिए भविष्यवाणी कर पाता है। यही बात बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद में आती है–

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गिसूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गिद्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा, मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्ति ।

सूर्य और चन्द्रमा अलग-अलग रास्ते पर चलते रहते हैं, एक-दूसरे से टकराते नहीं हैं। इसे *'अक्षरस्य प्रशासन'* कहा गया, अविनाशी का शासन, भारत या अमेरिका का शासन नहीं, बल्कि अविनाशी सत्ता। जब हम अंतरिक्ष को, ब्रह्माण्ड को देखते हैं, हमें हमेशा एक नियम दिखायी देता है। नियम आकस्मिक नहीं होते, उनका अस्तित्व संयोगवश नहीं होता। ये नियम एक बुद्धिमान् सत्ता द्वारा बनाये गये हैं, जिसे हम भगवान, राम, अल्लाह, ब्रह्म, गॉड या बुद्ध कहते हैं। नैयायिक उन्हें कर्त्ता कहते हैं, मीमांसक उन्हें कर्म कहते हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी हैं।

अंतिम सत्य

आखिर में हमें उनके पास जाना है। धर्म-कर्म के वाद-विवाद में पड़ने का कोई मतलब नहीं है। तुमसे इस पर विचार-विमर्श करते हैं, क्योंकि सत्संग के समय लोगों से कुछ बातचीत करनी है। पर मेरे अपने लिए तो केवल एक चीज है, चुपचाप बैठना और सोचना। कभी फूल खिलता है, कभी फूल झड़ता है। दोनों अच्छा है। अच्छा नहीं कहोगे तो भी झड़ेगा जरूर। नहीं बोलने से भी झड़ेगा। तुम खुद अपने को देखो। तुम इस धरती पर रहते हो। तुमको मालूम है कि धरती कितने घण्टे प्रति मील के हिसाब से आगे बढ़ रही है। अब पूछोगे किसी से कि हम आगे बढ़ रहे हैं कि नहीं तो क्या जवाब देगा? तुमको पता ही नहीं चलेगा इसका। धरती तो कई हजार मील के हिसाब से आगे बढ़ रही है। यह घूम रही है लट्टू की तरह और घूमते-घूमते आगे भी बढ़ रही है। मैं कहता हूँ कि आपको वह चीज पता नहीं चलेगी और कोई आपको बतला भी नहीं सकेगा। आगे बढ़ने का लक्षण क्या है यह भी मालूम नही है।

एक आदमी ने पूछा, 'पोटेशियम साइनाइड का क्या स्वाद होता है?' तो दूसरे ने कहा, 'खा लो, पता चल जाएगा।' पहले आदमी ने कहा, 'खाऊँगा तो बतलाने के लिए जीवित कैसे रहूँगा?' तो दूसरे ने कहा, 'तुम ऐसा करो, खट्टे के लिए पहली, मीठे के लिए दूसरी और नमकीन के लिए तीसरी अंगुली रखो। जैसा स्वाद हो उस अंगुली को उठा देना।' वह नहीं कर सका, साइनाइड खाने के बाद अंगुली उठाने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। अब पोटेशियम साइनाइड मीठा होता है या खट्टा, कौन बतलाएगा? इसी तरह जब मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग में

आगे बढ़ता है तो उसको कुछ पता नहीं चलता है। पता कुछ नहीं है किधर जा रहा हूँ, लगता है हवा में चला जा रहा हूँ।

मैं घनश्याम को देखता जा रहा हूँ ।
उसी की झलक पर खिंचा जा रहा हूँ ॥
लुटाता है वह मैं लुटा जा रहा हूँ ।
मिटाता है वह मैं मिटा जा रहा हूँ ॥
खबर कुछ नहीं है कहाँ जा रहा हूँ ।
बुलाता है वह मैं चला जा रहा हूँ ॥
मुहब्बत का मैं रंग यूँ ला रहा हूँ ।
निगाहों में उसकी बहा जा रहा हूँ ॥

आखिर घर वाला तो वही है, तुम थोड़े ही हो। न तुम घर वाले हो और न घरवाली हो। सारी दुनिया का घरवाला तो वही है। ये सब उसके घर हैं और हमारी समस्याएँ उसकी समस्याएँ हैं। भगवान इस घर के मुखिया हैं और हम सब उनके मूर्ख बच्चे हैं। घरवाला भगवान है, घरवाली लक्ष्मी है और हम सब लोग उनके नादान बाल-बच्चे हैं। पर हम लोग उनको भूल गए हैं, जैसे बच्चे अपने माँ-बाप को भूल जाते हैं शादी के बाद। हमलोग भी संसार में आकर उनको भूल जाते हैं। हमको मालूम है कि शाम को घर जायेंगे तो रोटी बनी हुई मिलने वाली है। मेरा मतलब, बच्चे चिन्ता नहीं करते। उनको सोचने की जरूरत नहीं है, क्योंकि जब वे वापस जाते हैं शाम को, तो माँ भोजन पकाकर तैयार रहती है, क्योंकि वह बच्चों के बारे में उनसे ज्यादा चिन्ता करती है। इसी तरह भगवान हमारे बारे में हमसे ज्यादा चिन्ता करते हैं। यही अंतिम सत्य है।

कीर्तन की महिमा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

बिना राम के भजन किये पाया किसने आराम कहो। आपको आराम मिला है क्या बिना राम के भजन किये? जब राम नहीं रहता तो काम आपको पागल करता है। धन की वासना, सामाजिक प्रतिष्ठा की वासना, सुख की वासना, सम्पत्ति की वासना– जहाँ पर राम नहीं वहाँ पर काम, और जहाँ पर राम आ जायें, वहाँ से काम भाग जाता है। यह एक निर्विवाद सत्य है जीवन और अध्यात्म का। जब भजन-कीर्तन होता है उस समय कहते हैं कि हमलोगों के मध्य दिव्य शक्तियों का अवतरण होता है।

एक बार नारद जी भगवान विष्णु के पास उनका इन्टरव्यू लेने के लिये गये थे। विष्णु जी तो मिले नहीं। नारद जी ने उन्हें सब जगह खोजा, पर कहीं मिले नहीं। उनका न तो कोई इन्टरव्यू हुआ न फोटोग्राफी हुई। अगले दिन जब नारद जी भगवान नारायण को देखते हैं तो प्रश्न पूछते हैं कि आप कल कहाँ थे। भगवान नारायण ने उस समय बहुत सुन्दर उत्तर दिया था–

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगीनां हृदये न च।
मद्भक्ता: यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

मेरा वास वैकुण्ठ में नहीं होता। वैकुण्ठ का मतलब क्या हुआ? भगवान नारायण का धाम जहाँ पर किसी भी प्रकार की कुण्ठा नहीं होती। *नाहं वसामि वैकुण्ठे* अर्थात् मेरा निवास वहाँ भी नहीं होता है। *योगीनां हृदये न च*–योगियों के हृदय में भी नहीं होता है। यहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है। सब कोई सोचते हैं कि योगी के साथ भगवान बसते हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं है। योगी के साथ भगवान नहीं बसते हैं क्योंकि योगी तो एक विद्यार्थी होता है, एक साधक होता है, एक प्रयासी होता है, पुरुषार्थी होता है। योगी का अर्थ इस भाव में लेना, योगी का अर्थ पहुँचा हुआ महात्मा नहीं है। आज तक कोई पहुँचा हुआ महात्मा नहीं हुआ है, सब मार्ग के यात्री हुए हैं। कोई एक पड़ाव तक पहुँचा है, कोई दूसरे पड़ाव तक, कोई तीसरे तक तो कोई चौथे तक पहुँचा है। लेकिन यात्रा तो अनन्त है, और अनन्त यात्रा में भगवान का नाम ही सहारा होता है। रामचरितमानस में भी तो कहा है न कि जिस व्यक्ति के दिल में श्रद्धा और विश्वास नहीं है, उस व्यक्ति को ईश्वर की अनुभूति नहीं होती है।

मद्भक्ता: यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद–यहाँ पर भगवान ने भक्त की पहचान बता दी। जो मेरे भक्त हैं, वे मुझमें चैतन्य हैं, मुझमें जागृत हैं, जो समझते हैं कि मैं हूँ, जो समझते हैं कि मेरे से जुड़ने से उनका उत्थान होगा, जो मेरे समीप आना

चाहते हैं। जैसे एक बच्चा बौद्धिक रूप से तो नहीं जानता कि माँ कौन है, लेकिन उसकी अन्तश्चेतना तो जानती है, और बच्चा जमीन पर रेंगते हुए अपनी माँ के पास पहुँचता ही है। भले ही वह बोल नहीं पाता, लेकिन पहचानता जरूर है। भक्त का भी ऐसा ही स्वभाव होता है। भक्त के जीवन में बुद्धि काम नहीं करती, केवल भावना रहती है, और जहाँ पर भावना प्रबल हो जाती है, और भावना से ईश्वर का, उसके नाम का आवाहन होता है, वह आंतरिक मानसिक अवस्था को परिवर्तित कर देती है, और स्मरण की उस भावना में, उस आनंद और आह्लाद की भावना में मेरा ही निवास होता है, *तत्र तिष्ठामि नारद*। अगर आप भगवान का सामीप्य चाहते हो, तो इसी सूत्र को याद रखना—न देवल में न मस्जिद में न काशी कैलास में, खोजोगे तो अभी मिलूँगा पल भर की तलाश में। वह संभव हो पाता है कीर्तन के साथ। इसलिये जब भी कीर्तन करना, मगन होकर करना!

—22 दिसम्बर 2015, रिखियापीठ

योगनिद्रा एवं नकारात्मकता

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मन में अशुभ विचारों या बुरी कल्पनाओं का उत्पन्न होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। जन्म-जन्मांतर के संस्कार, इच्छाएँ, वासनायें, संकल्प-विकल्प की शृंखलायें मन में सदा उमड़ती रहती हैं। यह मन का स्वाभाविक स्वरूप है। मन में सुखान्त और दु:खान्त, शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विचार आते हैं। जब मन में नकारात्मक विचार आते हैं तो इसका मतलब हुआ कि वह तुम्हारे भीतर जमा हुआ है। यदि तुम्हें वमन की इच्छा होती है तो इसका क्या अर्थ होता है? यही कि तुम्हारे शरीर में अम्लीयता है जिसे बाहर निकालना चाहिये। विषों और अशुद्धियों को अवश्य बाहर निकालना चाहिये, चाहे वे शरीर, मन या भावना में जहाँ भी हों।

इन नकारात्मक विचारों को, अपनी सभी त्रुटियों को योगनिद्रा का अभ्यास कर निकाल बाहर कर सकते हैं। योगनिद्रा की अवस्था में मन शिथिल होने लगता है। सजगता जब अन्तर्मुखी होने लगती है तो मानस पटल पर अनेक कल्पनायें और व्यक्तित्व के दोष प्रकट होने लगते हैं। उस समय अभ्यासी को पूरी सतर्कता एवं निर्भयता से केवल उनका निरीक्षण करते जाना चाहिये। किसी भी विचार से विचलित नहीं होना चाहिये। बिना किसी रुकावट के सभी विचारों को उमड़ने दें। जब तुम इन दमित विचारों को निर्बाध रूप से अभिव्यक्त होने का अवसर दोगे तो शुरू में योगनिद्रा का अभ्यास तुम्हें सफल होता नहीं लगेगा, लेकिन कुछ समय बाद नकारात्मक विचार और सारी क्षुब्धता स्वयमेव शांत हो जायेगी और एक हल्की तन्द्रा-सी बनी रहेगी।

अधिकतर लोगों के साथ सबसे बड़ी मुसीबत यही है कि इन दूषित इच्छाओं और विचारों से किस प्रकार बर्ताव किया जाये। वास्तव में त्रुटि धर्मों में हो रही है। उन्होंने मनुष्य की समस्याओं को वैज्ञानिक और व्यावहारिक रूपों से नहीं सुलझाया। उन्होंने लोगों को केवल थोथे आदर्शों पर चलने का उपदेश दिया, जैसे ऐसा मत सोचो, वैसा मत करो, यह स्वीकार मत करो, यह तुम्हारे लिये वर्जित है आदि। यह धर्माधिकारियों का एक तानाशाही आदेश था, और जबरदस्ती थोपा गया अनुशासन था। मानव समाज और राष्ट्र का जीवनस्तर तानाशाही और दबाव वाली विचारधारा से नहीं सुधर सकता। केवल नैतिकता की शिक्षा से आंतरिक व्यक्तित्व को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। इसके लिये एक बहुत ही सुव्यवस्थित, उदार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

यदि तुम्हारे देश में चालीस हजार अपराधी हैं और तुम उन सबको पकड़कर जेल में बंद कर दो या मार डालो तो क्या इससे अपराध समाप्त हो जायेगा? नहीं। यह व्यक्तियों की निरंतर बढ़ती हुयी विचार-प्रक्रिया का परिणाम है। इसी प्रकार

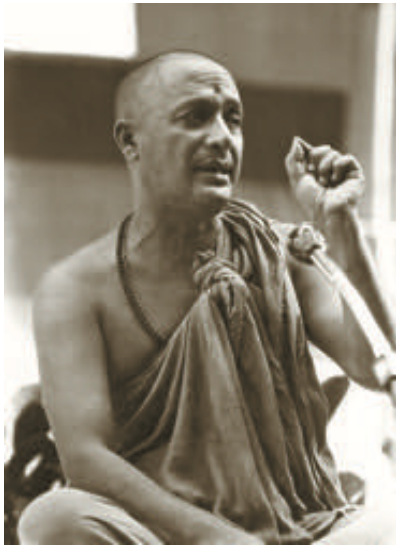

बढ़ता हुआ नकारात्मक दृष्टिकोण भी व्यक्तित्व की एक त्रुटि है जिसे खूब सूझ-बूझ और सकारात्मक, आशावादी दृष्टिकोण के साथ संभालना होगा।

अब सवाल है कि नकारात्मक विचारों को और शुभ, आशावादी विचारों को कौन जन्म देता है? कौन निराशावादी विचार उत्पन्न करता है तथा कौन उत्साहवादी विचारों का संगठन करता है? वही मन। जिस क्षण तुम सकारात्मक संकल्प करते हो उसी क्षण तुम्हारा मन कुछ नकारात्मक विचार उत्पन्न कर उसका विरोध करने लगता है और तुम बुरे विचारों को समाप्त करने का प्रयास करते हो। इस तरह स्वयं से लड़ने लगते हो, घृणा करने लगते हो और द्वन्द्व एवं तनाव के शिकार हो जाते हो। इसका अर्थ हुआ कि तुम अपने व्यक्तित्व में एक दरार पैदा कर रहे हो और तब अपने को संघर्ष एवं कलह में उलझे हुये पाते हो। इन सब समस्याओं में सामंजस्य होना चाहिये। यदि तुम्हारे दो बेटे हों, उनमें से एक अच्छा और एक बुरा हो तो तुम क्या करोगे? आखिर दोनों बेटे तुम्हारे ही हैं। तुम दोनों को तैयार करोगे, पोषण करोगे और अपना मानोगे। तुम बुरे बेटे को जान से नहीं मार दोगे। इसी प्रकार मन की दो विपरीत प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। दोनों को समान रूप से स्वीकार करना ही पड़ेगा अन्यथा तुम्हारा व्यक्तित्व अवरुद्ध हो जायेगा।

महर्षि पतंजलि ने अपने राजयोग के सूत्रों में मन को नियंत्रित करने की बात कही है। लेकिन व्यवहार में तुम इसे कैसे नियंत्रित कर सकते हो? क्या किसी मोटरगाड़ी के ब्रेक की तरह मन में भी ब्रेक लगाओगे? तुम कार का ब्रेक तो हमेशा काम में नहीं लेते हो। यह तभी जरूरी होता है जब कार टकराने वाली होती है। इसी प्रकार जब जीवन में कोई दुर्घटना होनेवाली हो, क्षुद्र विचारों का तांता तुम्हारे मानस पटल पर मँडराने लगे, तो तुम्हें अपने विचारों पर रोक लगानी चाहिये। बहुधा विचार केवल कपोल-कल्पनायें ही हुआ करते हैं। उनका वास्तविक जीवन में कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। तो फिर तुम इन निरीह, निर्दोष और तुच्छ विचारों से क्यों संघर्ष करते हो? यदि तुम्हारी कार आराम से चल रही है और न कोई लाल बत्ती है और न कोई टकराने की संभावना है तब ब्रेक लगाने से क्या लाभ? यदि तुम तेज गति से चलते समय बिना सोचे-समझे ब्रेक लगाओगे तो किसी दिन तुम्हारी कार का उलटना निश्चित है। इसलिये योगनिद्रा में या किसी आध्यात्मिक

अभ्यास में, यहाँ तक कि अपने दैनिक जीवन में तुम्हें व्यर्थ के नकारात्मक विचारों और वास्तविक विचारों-कल्पनाओं के बीच अंतर स्पष्ट करना होगा। यदि विचार हानिकारक नहीं हैं तो उन्हें आने दो क्योंकि इससे तुम अपने भावनात्मक विक्षेपों को दूर कर रहे हो और अपने अचेतन मन के बोझ को हल्का कर रहे हो। यदि तुम ऐसा नहीं करना चाहोगे तो भी प्रकृति तुमसे ऐसा करवा लेगी। स्वप्न ऐसे ही बोझ दूर करने की एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। यदि हमारे स्वप्नों का दमन कर दिया जाये तो हम पागल हो जायेंगे। स्वप्न अवचेतन मन से विकार दूर करने और उसकी अभिव्यक्ति के लिये एवं भ्रांतियों को मिटाने के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

क्या तुम जानते हो कि भ्रांतियाँ क्या हैं? यह मन का स्वप्नों में खोना है। तुम चाँद या मंगल ग्रह तक उड़कर जा सकते हो, तुम लखपति या करोड़पति बन सकते हो, राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री, कोई प्रख्यात नर्तकी या सुन्दरी बन सकते हो। इन भ्रांतियों का निकालना मानव विकास के लिये अति आवश्यक है और उन्हें ध्यान के अभ्यास में आने से कभी रोकना नहीं चाहिये। तुम भ्रांतियों से ऊब सकते हो। जब तुम मन के अंदर प्रवेश करोगे तो तुम्हें विचारों के समुद्र उमड़ते-से अनुभव होंगे। उनमें अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के विचारों का सम्मिश्रण होगा, लेकिन तुम उससे घबराना नहीं। विवेकी पुरुषों ने कहा है कि भ्रांतियों और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति मानव चेतना के विकास के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

नकारात्मक विचार कई प्रकार के होते हैं, जैसे किसी की हत्या करने का, बलात्कार, धोखा या चोरी करने का, बदला लेने या आत्महत्या का भी विचार हो सकता है। ऐसे विचार सामान्य लोगों के मन में स्वभावत: कभी-न-कभी आते रहते हैं। कभी ये विचार धीरे-धीरे बराबर आते हैं और कभी-कभी वे अचानक आ जाते हैं। कुछ लोगों में ये जीवन के प्रारंभिक काल में आते हैं और कुछ लोगों में ये वयस्कावस्था में उमड़ते हैं। यदि तुम इन विचारों का दमन करते हो तो वे अधेड़ावस्था में और दुगुनी ताकत के साथ उत्पन्न होते हैं। बहुधा पैंतालीस वर्ष की आयु से ऊपर के लोगों में नकारात्मक विचारों का अचानक विस्फोट होने लगता है।

मैं नकारात्मक विचारों के विषय में एक निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मानव मन का स्वतंत्र विकास होने के लिये प्राकृतिक प्रक्रियाओं को न छोड़ा जाये। तुम्हारे धर्मों ने जो कुछ उपदेश दिया है, उसे अभी भूल जाओ। यदि तुम योगनिद्रा कर रहे हो और अचानक कोई नकारात्मक विचार, बुरा विचार, उफन पड़े तो तुम्हें विचलित होने की जरूरत नहीं। बल्कि धैर्य के साथ, साक्षी भाव से उन विचारों का मात्र निरीक्षण करते जाओ। उन व्यर्थ के विचारों का बिल्कुल विश्लेषण नहीं करना है। ऐसा कई दिनों, सप्ताहों या महीनों तक अभ्यास करते रहो। एक-न-एक दिन नि:संदेह उन विचारों का अन्त होगा, मन शांत एवं एकाग्र होगा और तब तुम अन्तत: अपने प्रयास में सफल होगे।

कर्मों में रचनात्मकता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

तुम्हारे कर्म सृजनात्मक सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित होने चाहिए, उनका स्वरूप रचनात्मक होना चाहिए। हाथ कर्मों में कुशलता, निपुणता और पूर्णता के प्रतीक हैं; वे तुम्हारे व्यक्तित्व के सृजनात्मक आयाम को दर्शाते हैं। हाथों की प्रतिभा सृजनशीलता से आरम्भ होती है। यहीं पर कर्म योग की अवधारणा आती है। जो भी कर्म तुम्हें करने हैं, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक या आध्यात्मिक, तुम उन्हें अवश्य करो, लेकिन उन कर्मों से कुछ अपेक्षा मत रखो। उनके फल पर दृष्टि गड़ाये मत रखो। अपनी ओर से सबसे बढ़िया प्रयास करो और कर्म की प्रतिक्रियाओं से अपने आप को अप्रभावित रखो।

अनपेक्षा का दृष्टान्त

मैं छ: वर्ष की अवस्था में आश्रम रहने आया था। उन दिनों श्री स्वामीजी जब कभी मुझे कोई काम करने को कहते, मैं उसे पूरा करने तुरन्त दौड़ पड़ता और काम खत्म करके उनके सामने जा खड़ा होता। वे केवल इतना ही पूछते, 'काम पूरा हो गया?' मैं गर्व से कहता, 'जी हाँ, स्वामीजी।' वे कभी 'शाबाश' या 'बहुत अच्छा' नहीं कहते, बल्कि उनका अगला निर्देश होता, 'ठीक है, अब यह दूसरा काम करो।'

काफी दिनों बाद जब मैं सयाना हो गया, तब मुझे समझ में आया कि कोई भी काम पूरा करने पर मेरे अन्दर एक सूक्ष्म अपेक्षा रहती थी—प्रशंसा के दो शब्दों की। वह अपेक्षा हमेशा बनी रहती, वह कभी पूरी नहीं होती। मैं अपना उदाहरण यह समझाने के लिए दे रहा हूँ कि गुरु के साथ भी अपेक्षा रहती है। समाज में तो निस्संदेह धन, सम्मान, नाम और यश की अपेक्षा रहती है, जो इस सूक्ष्म अपेक्षा से कहीं प्रबल होती है। लेकिन गुरु के सान्निध्य में कुशलता और निष्ठा के साथ कर्म करते हुए भी मन के किसी कोने में यह विचार रहता है, 'काश स्वामीजी मेरे काम की प्रशंसा करें।' वही अपेक्षा मेरी भी थी। 'मुझे उम्मीद है कि स्वामीजी को मेरा काम पसन्द आएगा। वे मेरी पीठ थपथपायेंगे और कहेंगे—वाह निरंजन, तुमने कमाल कर दिया।' पर ऐसा कभी हुआ नहीं। जब मुझे इस अपेक्षा का आभास हुआ, मैं सतर्क हो गया। मैंने सोचा, 'अरे, मेरे अन्दर तो यह सूक्ष्म अपेक्षा छिपी है, जो दर्शाती है कि मैं अपने कर्म से कुछ-न-कुछ जरूर चाहता हूँ। यह ठीक नहीं।' जिस दिन मैंने इस विषय पर सोचना बन्द किया, उस दिन पहली बार श्री स्वामीजी ने मेरी पीठ थपथपायी!

शिष्यों के जीवन में भी अपेक्षा रहती है। यह बात तुम सब पर लागू होती है, फिर भी तुम लोग प्रवचन देते हो कि कोई अपेक्षा मत रखो। तुम्हारे अन्दर अपेक्षाएँ भरी हैं, पर दूसरों को अनपेक्षा का उपदेश देते फिरते हो। केवल इसलिए कि भगवद्गीता में यही कहा गया है, स्वामी शिवानन्द जी यही कहते थे, स्वामी सत्यानन्द भी यही कहते हैं। सैकड़ों प्रवचन देने के बावजूद तुम्हारे मन की गहराइयों में फल की आशा और अपेक्षा बनी रहती है। संन्यासी भी कर्म योग सिद्ध नहीं कर पाते हैं। मैं तब तक कर्म योग सिद्ध नहीं कर पाया जब तक मैंने यह नहीं समझा कि मुझे अपने गुरु से कुछ अपेक्षाएँ हैं।

बोरियत का इलाज

अपने कर्मों को सुधारने का उपाय यही है कि उनके साथ तादात्म्य मत रखो, लेकिन साथ ही जब उन्हें करते हो तो उनमें जी-जान लगा दो, अपनी पूरी रचनात्मकता लगा दो। एक संन्यासी के रूप में मेरे जीवन में अनेक दौर ऐसे रहे हैं जहाँ मेरी दिनचर्या लम्बे अरसे तक एक-समान रही। लेकिन मैं अपनी दिनचर्या से कभी नहीं ऊबा। बेशक दूसरे लोगों को ऊबते और हताश होते देखता हूँ। 'रोज उसी दफ्तर में जाना

पड़ता है, उन्हीं लोगों से मिलना पड़ता है, उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ता है', इस तरह के विचार तुम लोगों के मन में आते हैं। 'रोज वही मेज, वही रसीद बनाना,' तुम अपने काम से ऊब जाते हो, दिनचर्या से बोर हो जाते हो। जब बोरियत आती है, तब रचनात्मकता समाप्त हो जाती है, मन पर नियंत्रण छूटने लगता है।

मैं आज तक कभी नहीं ऊबा, क्योंकि मेरे गुरु ने योग सिद्ध करने के लिए मुझे एक सूत्र दिया था, जिसके प्रति मैं शुरू से सजग रहा और जिसका मैंने हमेशा पालन किया। उन्होंने कहा था, 'जो भी काम करते हो, ऐसा सोचकर करो कि जीवन में तुम उसे पहली और अन्तिम बार कर रहे हो। हर दिन के बारे में यही सोचो कि तुम्हारे जीवन का यह पहला और आखिरी दिन है।' बचपन से ही मैं प्रतिदिन सोचता, 'यह मेरे जीवन का पहला दिन है, और आज मैं जो भी करूँगा, उसे बेहतरीन तरीके से करूँगा।' कई बार मुझे पत्राचार जैसे आश्रम के सामान्य काम-काज करने को मिलते थे, पर मैंने कर्म के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित किया जो मेरे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया है–'आज मेरे जीवन का प्रथम दिन है, इसलिए इसे अच्छी तरह जीना है, प्रसन्नता के साथ जीना है और पूर्ण रचनात्मकता के साथ जीना है।' एक ही पत्र को बीस बार लिखना पड़ता तो भी मैं ऊबता नहीं था। हर प्रयास मेरे लिए प्रथम और अन्तिम था। चाहे साफ-सफाई का काम हो, योग की कक्षा चलाना हो अथवा कोई प्रशासनिक काम हो, चाहे श्री स्वामीजी के निर्देशानुसार कोई कार्य हो या स्वतंत्र रूप से किया गया कार्य, मैंने कभी किसी काम में बोरियत महसूस नहीं की। इसी वजह से मैं अपनी सारी ऊर्जा और सजगता सही काम को सही ढंग से करने में लगा पाया।

कर्मों के प्रति नवीन दृष्टिकोण

कर्म योग वास्तव में जीवन की परिस्थितियों, घटनाओं और परिणामों के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन है। जब तुम कर्म योग का अभ्यास करते हो, तब जीवन में किसी प्रकार का असंतोष नहीं होता। यदि सभी काम ऐसे कर रहे हो जैसे पहली बार और उनमें तुमने पूरी जी-जान लगा दी है तो फिर असंतोष क्यों होगा? ऐसी मनोदशा में असंतोष का प्रश्न ही नहीं उठता। असंतोष का अनुभव तब होता है जब तुम्हें लगता है कि तुमने पर्याप्त प्रयास नहीं किया। पर्याप्त प्रयास क्यों नहीं कर पाये? या तो तुमने काम को ठीक से समझा नहीं या फिर तुम आलसी थे।

रचनात्मकता को हम हाथों की प्रतिभा की कसौटी मानते हैं। रचनात्मक बनने के लिए प्रारम्भ में तुम्हें सजग प्रयास करना होगा। सजग प्रयास के बिना रचनात्मकता प्राप्त नहीं हो सकती। प्रारम्भ में यह सजग प्रयास एक निश्चित अवधि के लिए आवश्यक है। एक बार तुम इस मानसिकता में ढलकर अपने कर्मों के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपना लेते हो, तब रचनात्मकता तुम्हारे व्यक्तित्व का स्वाभाविक अंग बन जाएगी।

पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल के अनुभव

गंगा दर्शन में 9 से 17 मार्च तक पूर्ण स्वास्थ्य के लिए योग कैप्सूल सत्र संचालित किया गया। इसमें शामिल कुछ प्रतिभागियों के अनुभव यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

सत्य, सुंन्दर, स्वच्छ, निर्मल, सघन ऊर्जा से भरपूर इस आश्रम ने मुझे भी एक नई ऊर्जा से संचारित कर दिया है। मेरे अंतर को बिल्कुल निर्मल एवं शांत कर दिया है। इधर कुछ सालों से मैं काफी चिड़चिड़ी, शिथिल और हाइपर हो गई थी। मेरे अंदर पूरी तरह से नकारात्मकता भर गयी थी। मेरा लोगों और ईश्वर से विश्वास उठ चुका था। मुझे लोग स्वार्थी और मतलबी लगते थे जो सिर्फ दूसरों का फायदा उठाते हैं। लेकिन इस आश्रम में आकर लगा कि नहीं, लोग आज भी अच्छे हैं, दुनिया आज भी सुंदर है। मैं अगर यहाँ नहीं आती तो यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी गलती होती। हाँ, यह सच है कि मैं यहाँ खुद से नहीं आयी थी। मुझे जबरदस्ती भेजा गया था। पर ये मेरे जिंदगी के कुछ बेहतरीन दिनों में से थे, और अब मैं यहाँ फिर आना चाहूँगी। इस आश्रम ने मुझे फिर से सकारात्मक बना दिया जो मैं कभी हुआ करती थी। मेरा विश्वास फिर से लौट आया है। मैं शुक्रगुज़ार हूँ तहे दिल से।

– रंजना कुमारी, पटना

किसी भी आश्रम में दस दिनों के लिये रहना मेरे लिए पहला अनुभव था। जब मुझे बतलाया गया कि आश्रम के अंदर मोबाइल व इंटरनेट का उपयोग वर्जित है तो मेरी घबराहट काफी अधिक थी। आश्रम के मुख्य द्वार पर आने के उपरांत मैं दो घंटों तक फोन पर बार-बार बातें कर रहा था, मानो अगले पल मैं असहाय होने वाला हूँ। खैर, ईश्वर का नाम लेकर आश्रम के अंदर बिना मोबाइल के प्रवेश किया तो ऐसा लगा कि मैं अपने बिहार में नहीं, किसी अन्य प्रदेश में आ गया हूँ। आश्रम के सकारात्मक वातावरण और सभी संन्यासियों के बातचीत के तरीके को देखकर मैं अपनी परेशानी को भूलने लगा था। नि:संदेह प्रथम दो दिन परेशानी हुई किंतु मुझे बार-बार लग रहा था कि मेरे ऊपर ईश्वर की कृपा है और इसीलिये मैं आश्रम में हूँ।

मैं योग का अर्थ व्यायाम से जोड़ता था, किन्तु आश्रम में यौगिक जीवन का गृहस्थ आश्रम में समावेश का लाभ समझना मेरे लिए काफी उत्साहवर्धक रहा। मेरे कई प्रश्नों का साधारण, स्पष्ट शब्दों में उत्तर मिला, जिनके लिए मेरी जिज्ञासा बनी हुई थी। एक निश्चित नियम के अनुसार सुबह उठना, आसन-प्राणायाम, योगनिद्रा, कर्मयोग, सुपाच्य व स्वादिष्ट भोजन, ईश्वर का भजन, हवन व मंत्रों

का उच्चारण आदि इन सब को अपने व्यस्त जीवन में समावेश करने की प्रेरणा इस आश्रम ने मुझे प्रदान की।

मैं अपने शिक्षकों को धन्यवाद देने हेतु शब्द ढूँढ नहीं पा रहा हूँ, जिन्होंने मुझे नौ दिनों तक लगातार योग, मंत्र का उच्चारण, ध्यान व योगनिद्रा का अभ्यास कराया। मेरा शरीर काफी स्थूल व अकड़ा हुआ है, किन्तु मेरे हर गलत योग क्रम को रोककर मुझे अन्य विधि से करने हेतु उत्साहित किया। उन्होंने प्रशिक्षार्थी की छोटी-छोटी गलतियों को ध्यान से पकड़ा और मार्ग निर्देशित किया। उन्होंने बतलाया कि योग में रोग नहीं होता और योग विद्या केवल स्वास्थ्य लाभ के लिए नहीं है, बल्कि जीवन को सुसंस्कृत और संस्कारित करने के लिए भी है। उन्होंने गृहस्थ आश्रम में योग विद्या को आत्मसात् करने की प्रेरणा दी।

योग प्रशिक्षण के क्रम में योगनिद्रा का अनुभव सबसे अधिक प्रसन्न व आह्लादित करने वाला रहा। मैं समझता हूँ कि इससे मेरी कार्यक्षमता में बढ़ोतरी होगी। लघु शंखप्रक्षालन व अन्य षट्कर्मों की प्रक्रिया से गुजरने का अनुभव नया किन्तु मन को खुश करने वाला था। आश्रम में मिली शिक्षा और प्रेरणा के लिए सभी को शत शत नमन।

– अखिलेश कुमार, पटना

मेरा आश्रम प्रवास बहुत ही शान्तिपूर्ण एवं सकारात्मक भावनाओं से भरा रहा। बिहार योग विद्यालय के बारे में जब से मैंने सुना था, तब से मुझे आने की बहुत इच्छा थी और जब मैं यहाँ आई तो लगा मानो मेरा वह सपना साकार हुआ। यहाँ रोज की जो दिनचर्या है, सुबह 4 बजे उठना, 5.30 बजे हठयोग की कक्षा में जाना, 6.30 बजे नाश्ते का समय, फिर सबके साथ मिल-जुल कर कर्मयोग करना, फिर सुन्दर काण्ड का पाठ, फिर दिन का भोजन, सब एक निश्चित समय पर होता है, इसने मुझे बहुत ज्यादा प्रभावित किया। शाम के भजन-कीर्तन में तो मानो सारे गमों और दु:खों को भूल ही जाती थी, लगता था सचमुच प्रभु के समीप पहुँच जायेंगे अब तो।

जब मैंने पहले दिन अपनी योग शिक्षिका को देखा तो उनकी मुस्कान देखकर मन में ख्याल आया कि कुछ भी हो, इन्सान को जीवन में हमेशा हँसते रहना चाहिये, कभी हताश नहीं होना चाहिये। उन्होंने हमारी कक्षाएँ बहुत ही अच्छे ढंग से लीं। योग का अभ्यास तो मैं थोड़ा बहुत पहले से जानती थी, पर उल्टा-पुल्टा कर-कर के खुद का नुकसान भी कर लिया था। पर यहाँ समुचित निर्देशानुसार किया तो जाना कि किस बीमारी में किन आसनों को कैसे करना चाहिये और किन आसनों को नहीं करना चाहिये। कक्षा में और भी बहुत-सी सकारात्मक बातें सीखने को मिलीं, जैसे मन:प्रसाद तथा शिथिलीकरण एवं ध्यान के अभ्यास।

संक्रांति के दिन पादुका दर्शन जाना और वहाँ स्वामी निरंजनानन्द जी के दर्शन करना बहुत सुखद अनुभव रहा। मैं यहाँ आश्रम जीवन जीने और कुछ सीखने आई थी, यहाँ मुझे दोनों मिला। यहाँ मैं अपनी कुछ स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं को लेकर आई थी, आशा है कि मैं यहाँ से निश्चित ही लाभान्वित होकर जाऊँगी। इस आश्रम की सुबह 4 बजे से रात्रि के 7 बजे तक की अनुशासित दिनचर्या मुझे बहुत पसन्द आई। आश्रम में सब एक दूसरे का सहयोग करते हैं, यह देखकर बहुत अच्छा लगा। मैं यहाँ दुबारा आना चाहूँगी, और ज्यादा सीखने के लिये।

– गुंजन कुमारी, दरभंगा

महज यह संयोग नहीं गुरुकृपा से हम आए
सम्पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल कोर्स का अवसर हम पाए।
यहाँ आकर मुझे एक बात समझ आई
यौगिक जीवन अपनाने में है जीवन की भलाई।
शिक्षिका की मधुर वाणी से प्रारम्भ होती क्लास
महामृत्युंजय मंत्र, गायत्री मंत्र और दुर्गाजी के मंत्र का करते अभ्यास।
मंत्र, साधना, जप और आसन कितना होता है जरूरी
'ब्रह्मपुत्री' की कक्षा में आकर शिक्षा मिलती है पूरी।

मानसिक, शारीरिक व आध्यात्मिक प्रगति यहाँ गुरु ने समझाई
गंगा दर्शन में आकर होती है, षट्कर्म, योगकर्म द्वारा पूरी सफाई।
भारत और विदेश के हर जगह के लोग यहाँ मिलते
सद्भाव व प्रेम से रहते सदा हँसते व मुस्कराते।
स्वादिष्ट भोजन और ब्लैक टी के स्वाद बड़े मजे के
मौन रह कर हम विचारों का ताना-बाना बुनते रहते।
नाड़ी शोधन, प्राणायाम के सीखे कई प्रकार
उज्जायी और भ्रामरी अभ्यास से दूर हुए विकार।
योगनिद्रा व अजपाजप के जाने गूढ़ रहस्य
बहुत शक्तिशाली अभ्यास है दूर भगाए आलस्य।
निश्चित समय पर जागना, सोना और खाना
यौगिक जीवनशैली का अनुभव मैंने यहाँ सीखा और जाना।

– दिव्या मण्डलोई, इंदौर

मैं विगत पन्द्रह वर्षों से मधुमेह एवं चार वर्षों से राइटर्स क्रैम्प से पीड़ित हूँ। मेरी दोनों आँखों का वर्ष 2006 में मोतियाबिंद का सफल ऑपरेशन हुआ था। मेरी पत्नी विगत पन्द्रह वर्षों से मधुमेह से ग्रसित हैं और दस वर्षों से इन्सुलिन ले रही हैं। उनकी मस्तिष्क की समस्या का वर्ष 2008 में ऑपरेशन किया गया था। वे उच्च रक्तचाप की भी मरीज हैं जिसकी दवा लेती हैं। उन्हें अनिद्रा की भी शिकायत है, उसकी भी दवा लेती हैं। दो वर्ष पूर्व उन्हें स्पॉन्डिलाइटिस और फिर स्लिप्ड डिस्क हुआ और इस कारण बेल्ट लगानी पड़ती है।

यहाँ प्रवास के दौरान बहुत सारी यौगिक क्रियाएँ सीखने और करने का अवसर मिला। जिस सहजता, निपुणता और मनोयोग से सम्पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल का प्रतिदिन तीन सत्रों में संचालन किया गया, उस वजह से हम प्रतिभागी इसका पूरा फायदा उठा सके। शुरू में मेरी पत्नी को सीढ़ियों पर चलने में पैरों में कंपकपी होती थी और बिना सहारे के चलना सम्भव नहीं हो पा रहा था। लेकिन अभी वे पैरों में शक्ति और संतुलन अनुभव कर रही हैं और बिना सहारे के सीढ़ियों पर चलना भी हो रहा है। निजी अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि दस दिनों का यह कैप्सूल बहुत लाभप्रद रहा और उपयोगी क्रियाओं को घर लौटने के बाद भी हम लोग किया करेंगे। आश्रम की दिनचर्या एवं अन्य सुविधाएँ हमें बहुत अच्छी लगीं जिसके लिए कृतज्ञ हूँ।

– अजीत कुमार सिन्हा, पटना

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा–योग यत्र-तत्र-सर्वत्र

पृष्ठ 16

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

यह एक पत्रकार, रवि की गाथा है जो सेवानिवृत्त होने के बाद सोचते हैं कि अब वे जो जी में आए कर सकेंगे। लेकिन नियति ने उनके लिए कुछ और ही निर्धारित किया था। एक सुदूर पर्वतीय ग्राम में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस कार्यक्रम के सफल संचालन में अहम भूमिका निभाने के बाद वे समझ जाते हैं कि उनका आगामी जीवन बिहार योग विद्यालय एवं स्वामीजी की छत्रछाया में पूर्णतया योगमय होने वाला है।

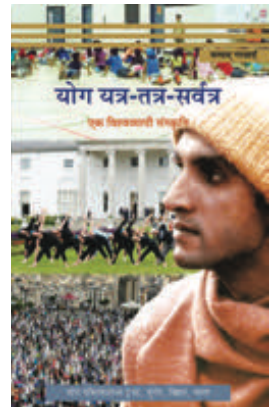

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट और एप्प

SATYANANDA YOGA BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

www.satyamyogaprasad.net वेबसाइट पर तथा Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में उपलब्ध

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ ऑनलाइन प्रस्तुत की जा रही हैं।

बिहार योग विकी

www.yogawiki.org

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर ऑनलाइन विश्वकोश प्रस्तुत किया जा रहा है जहाँ सभी साधकों के लिए यौगिक शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध होंगी।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, *ए.पी.एम.बी.* अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है।
- *बिहार योग एप्प* साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2019

अगस्त 16-22	राज योग यात्रा 1 एवं 2
अगस्त 23-29	राज योग यात्रा 3 एवं 4
अक्टूबर 1-30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1, 2 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 11-17	क्रिया योग यात्रा 3
दिसम्बर 18-22	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net **कार्यक्रमों एवं प्रशिक्षणों के आवेदन-पत्र यहाँ उपलब्ध हैं**

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।